मराठी के तीन उपन्यास

- कोष
  शैलजा राजे
- मन का रंग
  शकुन्तला गोगटे
- शार्टकट
  नयना आचार्य



संपादिका : मनुहरि पाठक

मूल्य बीस रुपये / प्रथम संस्करण, १९७९ / आवरण इमरोज/
प्रकाशक पराग प्रकाशन, ३/११४, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा,
दिल्ली–११००३२/मुद्रक शान प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

MARATHI KE TEEN UPANYAS *Edited by* Manuhari Pathak

कोष/शैलजा राजे

१

यह सारा महीना दौड़-धूप, गड़बड़ी मे ही बीता था। आज मैं विचलित-सी हो रही थी। मुझे अपना होश नहीं था। वे दोनों साथ-साथ घर से बाहर निकले। मैं आंखें भरकर उनकी ओर देख रही थी। दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर चल रहे थे। पीछे घूम-घूम मुझसे टा-टा कर रहे थे। मैं हंस रही थी और रो भी रही थी—क्यों? यह तो अनुभव की बात है। साहब पीछे खड़े थे। अपने बच्चों की ओर गर्वित प्रशंसा से देख रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा, "देखा, मेरे पट्ठे अब एक नया पदक लेकर ही आयेंगे।"

उनकी ओर देखने की तो मेरी इच्छा भी नहीं हो रही थी, न उनकी बात सुनने की। वे साहब थे—बड़े आदमी थे, जागीरदार थे। उनके हाथ मे हीरे की अंगूठी जगमगा रही थी। रेशमी झब्बा हवा मे उड़ रहा था। मूंछें बलदार थीं। कभी-कभी मुझे उनकी मूंछों पर हंसी आती थी। पुरुष की बड़ी-बड़ी सघन मूंछें ही क्या उसके पौरुष की प्रतीक हैं? इस आदमी के पास और क्या है? क्या समझ यह मेरे ऊपर अधिकार जमाता है? मैं उसकी कौन हूं?

इन विचारों से मेरा मन सदैव विचलित हो उठता था। अभी भी यही हो रहा था। मैंने मुड़कर उनकी ओर देखा। अपनी बारीक आंखें और अधिक बारीक करके वे मेरी ओर देख रहे थे। घबराकर मैंने गर्दन घुमा ली। मेरी आंखों मे संताप-तिरस्कार उभर आया था—मैंने उसे छिपाने का भी प्रयास नहीं किया। उन्होंने मेरे भाव पहचान लिये। मेरी ओर देखकर

हुमे—खडखडाहट-भरी हसी।

अन्दर से आवाज आयी, "क्यों साहेब, गये क्या तुम्हारे पट्ठे? मुझे आने मे थोडी देर हुई।"

मेरे मन की कली-कली खिल उठी। मैंने तपाक से पीछे देखा। वे डॉक्टर सुरेश थे—ऊचे, पूरे-सुन्दर। मैं हसी। उन्होंने गर्दन झुका ली। बोले, "तुम्हारे लाडले बालक गये? कर दिया बिदा उनको?"

"किसी के आने-न-आने से गाडी नही रुकती। समय पर ही छूटती है।"

साहब मुह तिरछा करके हमारी बात सुन रहे थे। यह उनकी हमेशा की आदत थी। अभी भी वे हस रहे थे। डॉक्टर न आगे बढ कर उनका हाथ पकडते हुए कहा, "चलिए साहब, चाय तैयार ही होगी।"

सुरेश भी ऐसे ही हैं पक्के लबाडी, जब से मैं उन्हे जानती हू—मैं इस घर मे आयी और पीछे-पीछे वे भी। उनको देख कर मैं कितना घबरा गयी थी। हृदय तेजी से धडकने लगा था। आख से आख मिलाने की हिम्मत नही थी। झुककर नमस्कार करते हुए वे मुझसे बोले, "मैं डॉक्टर सुरेश हू। बाई साहब, आपके इस गाव में अस्पताल बनाऊगा। साहेब का उदार आश्रय मुझे मिल गया है।"

गर्दन उठाना मेरे लिए अनिवार्य हो गया। मैंने सुरेश की ओर देखा। उनकी नीली-नीली आखो मे चमक थी। उनमे बहुत कुछ छिपा हुआ था—पर मैंने क्षण-भर म पढ लिया। सुरेश यहा आये थे—मेरा पीछा करते हुए—मेरे लिए ही। मैं सारा नाटक समझ गयी। मैंने धीरे से साहब की ओर देखा। वे अपनी भव्वदार मूछो को उमेठने मे मग्न थे। यह आदमी मुझे कभी अच्छा नही लगा था। इस समय उसके प्रति अरुचि और गहरी हो गयी—सुरेश के सान्निध्य मे उसे देखकर।

मैंने साहब की ओर देखा और तुरन्त ही सुरेश की ओर दृष्टि घुमा ली। अपनी गहरी आखो से वे मेरी ही ओर देख रहे थे। उनकी इस दृष्टि से मैं मुग्ध हो उठी थी। मेरा मनचाहा ही तो मुझे मिल रहा था। सुरेश की ओर से नजर हटाकर मैंने कहा, "अच्छा हुआ, यहा एक अच्छे दवाखाने की आवश्यकता भी थी। आपको कुछ असुविधा हो, तो मुझे बताना। आपको

हमारी ओर से हर प्रकार की सहायता मिलेगी।"

"मैं आपका कृतज्ञ हूं। साहेब के साथ आपका भी पूरा आश्रय हमें मिल रहा है, इससे मैं धन्य हो गया हूं। आपके उदार आश्रय की चर्चा तो दूर-दूर तक फैली हुई है।"

मुझे हंसी आयी—सारा ही तो नाटक था, सुरेश का नाटक—मेरा नाटक। और साहेब ? मैंने साहब की ओर देखा, वे अभी भी मूछों में ही खेल रहे थे। मैंने कहा, "डॉक्टर को आपने खास करके बुलाया है। वे आज हवेली में ही रहेंगे—अपने मेहमान बनकर।"

"वाह वाह, बहुत अच्छा।"

साहेब को शायद इन शब्दों के अतिरिक्त और कुछ बोलना नहीं आता था। मेरा सारा संताप तो यही था कि इस प्रकार के व्यक्ति ने मुझे बाँधकर, जकड़कर रखा था। प्रारम्भ में तो मेरी वेदना और भी अधिक गहरी थी। यह जागीरदार दीदी की शादी में क्या आया, वहां मेरी ही मांग कर बैठा। मैं चिढ़ उठी थी—गुस्से से भर गयी थी। मैंने घर से भाग जाने का भी प्रयास किया। मेरे ऊपर सख्त पहरा लग गया। मां, बाबा, दीदी—सभी मुझे मूर्ख समझने लगे। मेरी बात तो कोई समझता ही नहीं था। मां कहती थी, "सात जन्मों के भाग्य से ऐसा घर मिलता है। अपने-आप आयी लक्ष्मी को लात मत मार। भगवान ने तुझे रूप दिया है—उसी की आज कीमत हो रही है।"

दीदी कहती थी, "बेवकूफ, देख मेरे लिए बाबा को कितने जूते घिसने पड़े, कितने अपमान सहन करने पड़े—याद है ना ? केवल मेरे विवाह के लिए दो खेत बिक गये। तेरे लिए भी यही करना पड़ता। अच्छा हुआ यह मंगनी आ गयी। अब तू हां कह दे।'

बाबा के विचार दूसरे थे, पर स्वर वही था, "तू पढ़ी-लिखी है, उचित-अनुचित का विचार करने की सामर्थ्य तुझमें है। इस सम्बन्ध से हमें खूब लाभ होगा।"

साहेब कितना पढ़े थे, मुझे पता नहीं। पर वे अनेक वर्ष विदेश रह थे, इसीलिए सबका मानना था कि वे खूब पढ़े होंगे। मैं बी०ए० में बैठी थी, पास होना निश्चित था। मेरे सपने दूसरे थे। मुझे कुलीनता का अभिमान

नही था। किसी गाव की जागीरदारी प्राप्त करने की मेरी इच्छा नही थी। मैंने बाबा को बेहाल होते हुए देखा था। मुझे मालूम था कि दीदी के विवाह मे इतनी देर क्यो हुई। मेरे नये जीजाजी भी एक गाव के जागीरदार ही थे। साहेब उनके राजा थ। भव्वेदार मूछो वाला पहलवान जैसा यह राजा मुझे बिलकुल पसन्द नही आया था। उसने दीदी को जो दुशाला दिया था, वह मूल्यवान था, तो भी उसम सौन्दर्य नही था, रसिकता नही थी। मैंन तो कह भी दिया था, पर यह राजा अपने मुह पर अपनी निश्चित छाप वाली हसी फैलाकर बोला था, "हमे रसिकता सिखान वाला व्यक्ति अभी हमारे गावडे म नही है। हम उसकी खोज म ही है।"

मैं शुद्ध बोलती थी। मरी शिक्षा अच्छे स्कूल म हुई थी। मेरी मित्र भी सफेदपोश थी। मुझे उनका 'गावडे' शब्द खटक गया। यह मनुष्य कितने ही वर्ष विदश क्यो न रहा हो, उसन अपना गवारूपन छोडा नही था, लगता भी नही था कि कभी छूटेगा। मैंने उसी के शब्दो म कहा, 'गाव मे क्या नही होगा ? आदमी की नजर ठीक हो, तो मिलता है।"

मेरा व्यवहार तथा मेरी बात सुनकर मरी मित्र हस रही थी। साहब लाल-लाल हो रह थे। जीजाजी चिढ गये थे, बाबा मुझ पर नाराज हुए, सबने मुझे वहा से हटा दिया, दीदी रोयी। अन्त मे दीदी के लिए ही मैंने राजा साहेब स क्षमा मागी। जीजाजी को समझाया, तभी यह सारा झडकप समाप्त हुआ। दीदी सुखपूर्वक ससुराल गयी।

एक दिन अचानक ही बाबा के नाम जीजाजी का पत्र आया। राजा साहब ने मेरी माग की थी। यह राजा साहब मुझे बिलकुल ही पसन्द नही था। उसका बोलना, चलना, व्यवहार—सभी कुछ मेरे स्वप्निल स्वभाव के विपरीत थे। मैं खूब रोयी। उसने तो मुझे कीमत पर चढा दिया था। दीदी के विवाह पर बाबा ने जो जमीन बेची थी, वह उसने बाबा के नाम फिर से खरीद दी थी। मैं इतनी मूर्ख नही थी कि इसका अर्थ न समझू। उसने मुझे शब्दश खरीदा था।

विवाह म एक दिन पूर्व ही सुरेश म मिलना था, पर सम्भव नही हुआ। सुरेश उस समय दिल्ली गये थे। उनका पता मरे पास था। मैंने पत्र भी लिखा पर डाक मे कौन डाले ? मेरी दोस्तो को घर आन की मनाही थी,

भाई मुझसे बोल रहे थे, मैं अकेली पडी तडपती रहती थी, रोती रहती थी। सोचती थी, पख लगाकर घर की खिडकी से उड जाऊ, सुरेश से मिलू, उसे सब कुछ बताऊ। उसके विशाल वक्षस्थल की सुरक्षा मे चली जाऊ।

पर अन्त तक उनसे मिलना न हुआ। इस जागीरदार के गाव मे आकर ही मेरा विवाह हुआ। मेरी कोई मित्र, कोई सहपाठी—मेरा तो कोई भी इस विवाह मे नही था। मैंने चिढकर मा से कहा भी, "यह कैसी शादी है ? मुझे क्या भगाकर लाये हो ? यहा मेरा भी कोई है क्या ?"

मा ने कहा, "तेरा कोई नही, फिर हम कौन हैं ? हम क्या तेरे दुश्मन है ?"

ये सब मेरे दुश्मन ही तो थे। मुझे सुरेश से प्रेम था, मुझे उससे विवाह करना था। मैं क्या चाहती थी और क्या हो गया ? मेरा हृदय तडप रहा था।

विवाह हुआ। मेरे वजन के बराबर सोने से मुझे लाद दिया गया। भीड घर मे समा नही रही थी। सभी सम्मान दे रहे थे। 'बाई साब', 'मामी साब', 'भाभी साब', 'काकी साब'—इन सब 'साब'-'साब' शब्दो पर मुझे हसी आ रही थी।

विवाहोत्सव लगभग आठ दिन चला। मुझे उसमे कोई रस नही मिल रहा था। नाटक का खलनायक इस समय नायक की भूमिका मे मुझे दिखायी देता था। मैं आक्रोश से भरी हुई थी। जिस व्यक्ति ने इतने आग्रह-पूर्वक मेरी माग की, वह इन आठ दिनो मे मेरे पास तक नही आया था। मुझे इसकी ललक भी नही थी, वास्तव मे तो यह अच्छा ही था—पर मुझे आश्चर्य 'साहेब' की मनोवृत्ति पर था। वे दोस्तो मे मग्न थे। आदर-सम्मान के आदान-प्रदान मे व्यस्त थे। कभी भी मुझे बुलावा आ जाता। मेरे सभामडप मे जाते ही सभी मेरी ओर देखने लगते। साहेब मेरे हाथ मे हाथ डालकर मुझे मेहमानो के सामने ले जाते। चलते-चलते कान मे कहते, "सिर पर ठीक से पल्ला ले लो।"

मुझे इस प्रकार पल्ला लेने का अभ्यास नही था। मुझे यह पसन्द भी नही था। मैं उनके कथन पर विशेष ध्यान नही देती थी। साहेब केवल मेरी

ओर देखते रहते।

फिर मेरा परिचय दिया जाता। साहेब अपनी खटखडाहट भरी हँसी के साथ कहते, "हमारी पत्नी। अब बी०ए० होने वाली हैं।"

मैं हाथ जोडकर नमस्कार करती। कोई बड़ा आदमी अकडकर बैठ जाता। इच्छा करता कि मैं झुककर नमस्कार करू। पर मैंने अपना तरीका निश्चित कर रखा था।

विवाह के सारे उत्सव पूरे हो रहे थे। आखिरी रस्म पूरी हो रही थी। होम-हवन चालू थ। जरीदार साडी और हीरे-मोती के गहने पहनकर साहेब के पास बैठी थी। हस्त मिलन हुआ। भट्ट भी मंत्र पढ रहे थे। मुझे लग रहा था, यह यज्ञ मेरी बलि के लिए ही तो है।

होम हवन पूरे हुए, मिठाई की थालिया सामने रखी थी। दीदी पास में ही थी। उसके अंग प्रत्यंग से गर्भ-तेज झलक रहा था। इच्छा होती थी कि उसकी ओर देखती रहू। किसी ने उसकी थाली में खीर की दो कटोरिया लाकर रख दी। किसी ने मजाक किया—दीदी साहेब कौन-सी कटोरी के हाथ लगाती है? पता चलेगा, लड़की या लड़का—पेडे या बर्फी?

किसी ने मेरी थाली में भी इसी तरह दो कटोरिया रख दी। मैंने चिढ-कर गुस्से से कहा, "यह मेरी थाली में क्यो? मेरे तो कोई गर्भ नही है।"

'छि! छि! यह क्या? क्या तेरी जीभ में हड्डी नही है? इस प्रकार बोलना अच्छा नही लगता।"

मा ने धीरे से डाटा था। परोसने वाली बाइया कानाफूसी कर रही थी। दीदी और मा के कान लाल हो गये थे। मुझे भी थोड़ा महसूस हुआ कि मैंने अपने हठ के लिए दीदी के आनद पर प्रहार किया। बाई गोद भरने का सामान लायी। उसने दीदी की गोद भरी और फिर मेरे मुह में पेडा ठूसते हुए बोली, "सामो ना भाभी साब, अब आप जल्दी मौसी बनोगी। आपकी थाली में आज यह खीर क्यो रखी, मैं बताती हू। आज आपकी सुहागरात है ना, सब यही जानना चाहते हैं कि पहले क्या होगा। एक कटोरी उघाडो।"

मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। वह लगभग मेरी ही उम्र की थी, पर उसमे कितनी समय सूचकता थी। मुझे वह बहुत अच्छी लगी। मन

की सारी कटुता भूलकर मैं उसकी ओर हँस दी। वह भी हँसी। आज पहली बार मैं किसी की तरफ देखकर हँसी थी। उसने हँसते-हँसते मेरे मुँह में लड्डू ठूँस दिया। बोली, "भाभी साब, इस घर में कोई महिला नहीं थी। हमारी मामी मरी, उस समय दादा साब इग्लैंड थे। हवेली में लोगों का आना-जाना चलता था, किंतु उसमें रंग नहीं था। अब आपके आते ही हवेली जगमगा उठी है। आप सुखी रहें।"

मैंने सिर हिलाकर हां कहा, मैं खुद ही नहीं समझ पायी कि यह कैसे हो गया। वह तो दिन-भर मेरे साथ ही लगी रही। मुझे हँसाती थी, खुश करती थी, हँसी-मजाक करती थी। वह कुछ जानकारियां मुझे देती थी, मैं समझ नहीं पाती थी, तो भी लगता था कि वह बोले—बोलती रहे।

रात को उसने ही मेरा शृंगार किया। मुझे दर्पण के सामने खड़ा करके बोली, "दादा साब इस मुँह पर यों ही मोहित नहीं हो गये। उन्हें तो चन्द्र-मुख ही प्राप्त हो गया है।"

वह इतना कहकर ही नहीं रुकी। उसने तपाक से मेरा चुंबन ले लिया। मेरी बलैयां लेती हुई वह बाहर चली गयी। कितनी ही देर तक मुझे उसके चुंबन की याद आती रही। उस चुंबन का मद मुझमें फैल रहा था। मैं उसी की याद कर रही थी। साहेब कमरे में कब आये, मुझे पता ही नहीं चला।

२

विवाह को दो महीने हो गये थे। प्रथम भेंट में ही साहेब ने कहा था, "तुमने कहा था न कि हमारे लाने दुशाले में सौंदर्य नहीं था, रसिकता भी नहीं थी। अब बताओ, हमारे पास सौंदर्य और रसिकता दोनों ही हैं या नहीं?"

साहेब मुझसे बहुत अच्छा व्यवहार रखते थे। उनके हाथ से ऐसी कोई बात नहीं होती थी, जिससे मेरे हृदय को कष्ट पहुंचे। मुझे सुखी रखने के लिए वे हमेशा प्रयत्नशील रहते थे। मैं देखती थी कि इस श्रीमन्त, किन्तु

एकाकी जागीरदार को अपनापन चाहिए था। मुझे उन पर दया आती थी। उनके लिए चिन्ता करती थी, पर उनके साथ समरस होना मेरी शक्ति से बाहर था। मेरा मन ही वहां नहीं लग रहा था। कोशिश करके भी सुरेश को मैं भूल नहीं पा रही थी। मा-बाबा चले गये थे। सुरेश दिल्ली से वापस आ गये थे। उन्हें मेरे विवाह की जानकारी मिली ही होगी। उन्हें कैसा लगा होगा? क्या वे मुझे झूठी, धूर्त, बेईमान समझ रहे होंगे? क्या उन्हें मेरी विवशता की कल्पना मिली होगी? वे अब क्या करेंगे? एक बार उन्होंने मुझसे कहा था, "सरल, तू कहीं भी हो, मैं कहीं भी रहूं, पर मैं तुमसे कह देता हूं कि तू जहां भी होगी, वहां मुझे ढूढ़ता हुआ पहुंच ही जाऊंगा। तेरे बिना मेरा जिन्दा रहना सम्भव ही नहीं है।"

मैंने घर-गृहस्थी की ओर ध्यान देना शुरू किया। मेरी उस ननद ने इस जागीरदारी की कई बातें मुझे अच्छी तरह समझायी थीं। साहेब ने भी मुझे पूरी जागीर में घुमाया था। मैं देखती थी कि जिस व्यक्ति को मैं पसन्द नहीं कर पा रही थी, वही व्यक्ति जब अपनी जागीर के किसी गांव में जाता, तो लोगों को भगवान के दर्शन जैसा आनन्द मिलता। उस समय साहेब की ओर देखकर मुझे आश्चर्य होता था—क्या यह आदमी इतना अच्छा है। वे मुझे कभी-कभी किसी गरीब खेतिहर के घर भी ले जाते। मेरा परिचय कराते। उनकी बनायी हुई गुड़ की चाय बहुत प्रेम से पीते। मुझे तो वहां बैठना भी मुश्किल पड़ता। बाहर आने पर साहब कहते—'तुम शहर की हो, तुम्हें इन बातों की आदत नहीं है। पर अब कुछ ध्यान देना ही पड़ेगा। प्रजा ही अपनी मा-बाप है। हम विदेश थे, इसलिए उनके लिए कुछ नहीं कर सके। अब बहुत कुछ करना चाहता हूं। तुम्हारा साथ मिलना चाहिए।"

मैं मन में कहती, 'तुम आज तक नहीं समझ पाये कि मेरा मन मेरे पास है ही कहां?' ऐसे समय मैं सुरेश के लिए व्याकुल हो उठती। उसकी यादें दिमाग में घूमने लगतीं। सुरेश, मेरी दोस्त के छोटे काका—उसी के यहां उनसे पहली बार मिली। फिर तो जब भी वहां जाती, मेरी निगाहें सुरेश को ही ढूंढ़ती रहतीं। अपने से दस वर्ष बड़े सुरेश से मैं प्रेम करने लगी थी।

पर यह अघटनीय घटित हो चुका था। एक जागीरदार ने मेरे जीवन मे प्रवेश कर लिया था। वह मुझ पर अपना अधिकार जमा रहा था। अपने मन की नाराजगी छिपाने मे मेरी ही व्याकुलता बढती थी।

इन दो महीनो मे हमारा सारा व्यवहार विवाहित स्त्री-पुरुष जैसा ही चल रहा था। मैंने हवेली का सारा रूप-रग बदल दिया था। उसका पुरानापन निकालकर अपने मन के अनुसार उसे सजाया था। तिजोरी की चाबिया मेरे हाथ मे रहती थी। मैं सारा काम देखती थी। शिक्षित होने के नाम पर ही मुझे सारे अधिकार प्राप्त हो गये थे। राजू ननद से मेरी दोस्ती जम गयी थी। नाते-रिश्तेदारो से भरे हुए इस माहौल मे मुझे केवल वही ऐसी लगी थी, जो मेरे मन का दुःख समझ पा रही थी। कारण का उसे भी पता नही था।

साहेब के व्यक्तित्व और स्वभाव से मुझे कोई शिकायत नही थी, तो भी मेरा मन नाराज था। साहेब ने मेरी इच्छा के विरुद्ध कभी मेरा स्पर्श तक नही किया। जिस प्रकार मुझे उनकी हसी खलती थी, उसी प्रकार उनका स्पर्श भी मुझे अरुचिकर था। उनके स्पर्श से मैं कभी भाव-विभोर नही हुई। उनके आलिगन मे कभी भी स्पदित नही हुई। बीमार आदमी के मुह मे कोई स्वाद नही रहता, तो भी जो कुछ सामने आता है, उसे जबर्दस्ती वह खाता है, यही हाल मेरा था। हमारे मिलन मे कोई रग नही था, कोई सुगन्ध नही थी। सभी कुछ निर्जीव, शून्य और सवेदनारहित चलता था।

मेरे लिए यह सब असह्य था। पर मैं इसमे फस चुकी थी। आस-पास बाधे गये सारे धागे-डोरे तडानड तोडकर इस चक्र से निकलने की हिम्मत मेरे मे नही थी। जाल अधिक गहरा होता ही जा रहा था और मैं उसमे तडपती रहती थी। मेरी तडप साहेब के ध्यान मे कभी आ जाती, तो वे मृदुता से कहते—"हमारे कारण तुमको कोई कष्ट हो रहा है? हम तो जैसा तुम चाहती हो, वैसा ही करते है।"

साहेब के शब्दो का मेरे पास कोई उत्तर नही था, मैं स्वय पर ही चिढती थी। मैंने यह उपदेश कई बार सुना था कि जो कुछ भाग्य मे है, उसी मे सुख को ढूढना चाहिए, पर इसे प्रत्यक्ष व्यवहार मे नही ला पा रही थी। कई बार साहब के आलिगन मे रहते हुए मैं सुरेश का ही विचार

खटकती रहती। मुझे सुरेश चाहिए थे। मेरे मन में यही एक वेदना थी।

मेरी वेदना दिनों-दिन बढ़ रही थी। विवाह के बाद मैं मायके नहीं गयी थी। जाने की इच्छा भी नहीं थी। इस विवाह से मायके के बारे में मेरा सारा प्रेम समाप्त हो गया था। माँ का पत्र आता था। बाबा साहब को पत्र लिखते थे। दुनिया की दृष्टि में सारे व्यवहार अच्छी तरह से चल रहे थे। पर मैं जैसे दुनिया से दूर थी। मुझे न मायका चाहिए था, न कोई दोस्त। मेरा तो सारा ध्यान सुरेश में था।

माँ का निमन्त्रण आया, कभी बाबा ने भी बुलाया, तो साहब कहते, "आपके जायेंगी क्या? दीवानजी को व्यवस्था करने को कहूँ। दो चार दिन के लिए जा आओ।"

मैं इनकार कर देती। साहब प्रसन्न हो उठते। वे प्रेमपूर्वक पास आकर पूछते, "सभी औरतों को मायके जाने की बड़ी इच्छा रहती है पर तुम तो हमारे कहने पर भी जाना नहीं चाहती।"

मुझे साहब पर गुस्सा आता, कैसा आदमी है यह? मैं क्यों मना करती हूँ, इतना भी नहीं समझता।

राजू ननद आयी थी, मैंने खुले मन से उनका सत्कार किया। उन्होंने कहा था, "भाभी साब, भाभी साब के आने के बाद से अभी तक मायके से इतना कभी नहीं मिला। आपने तो बहुत किया।'

मैंने उनको पास खींच लिया, मुझे वह बहुत अच्छी लगी थी। उनको देखकर ही मैं समझ पायी थी कि व्यक्ति केवल शिक्षा से गुणवान नहीं होता। वे किसी तरह सातवीं तक पढ़ी थी, पर उनकी बोल-चाल-व्यवहार में कितनी सफाई थी।

वह वापस ससुराल के लिए निकली। जाते समय उन्होंने साहब से कहा, "दादा साब, भाभी साब विवाह के इतने दिन बाद भी अभी तक मायके नहीं गयीं। उन्हें दो न दो-चार दिन की छुट्टी।"

साहब ने हँसकर कहा था, "अरे राजू, तुमको क्या लगता है कि हम नहीं जाने देते? पूछो अपनी भाभी साहब से।'

"मुझे नहीं जाना।" मैंने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

"क्यों? क्या दादा साब ने कोई मन्तर-जन्तर कर दिया है!"

"न मन्त्र, न तन्त्र, राजू बहन ! जिन मा-बाप ने मेरे लिए दहेज लिया, उनके पास जाने की मेरी इच्छा नही होती ।"

मेरी स्पष्ट बात सुनकर साहेब चमक उठे। राजू ननद घबरा गयी। वे मेरे पास आयी और बोली, "भाभी साब, आपके इस रूप का तो इस पृथ्वी पर कोई मोल ही नही हो सकता। हमारे दादा साहेब क्या दे सकते हैं।"

मैंने कहना चाहा, "तुम्हारे दादा साहेब ने मुझे कीमत देकर नही खरीदा क्या ?"

पर मैंने अपने मन को सयमित रखा। इस सीधी-सादी ननद बाई के जी को दुखाना मुझे नही रुचा। मैंने उनकी पीठ थपथपाते हुए कहा, "आपने भाई की बड़ी पैरवी करती हो। मुझे ऐसी ननद मिलने का आनन्द है। वापस जल्दी आना।"

"आऊगी-आऊगी, तुम्हारी गोद भरने के लिए।"

यह कहकर वे हसी और लजा भी गयी। मुझे न तो हसी आयी और न लाज। मेरा मन फिर से विद्रोही हो उठा।

घर मे काम नही था। साहब की जरूरतें सादी थी। मुझे इसी का आश्चर्य था। मैं विश्वास नही कर पाती थी कि एक जागीरदार इतना सीधा-सादा और सरल हो सकता है। सुबह उनके साथ भोजन पर दो-चार मेहमान रहते ही थे, इसलिए विशेष भोजन बनता था। किन्तु रात्रि को सब्जी रोटी और दही। पीने पिलाने का उनको शौक नही था। मेहमानो को तो कभी कभी पिलाते थे, पर स्वय शायद ही लेते।

मैंने एक बार उनसे इस बारे मे पूछा भी था कि विदेशवास और सारी सुविधाओ के बाद भी आप इन बातो से कैसे बचे हैं ?

साहब ने कहा, "तुमको कल्पना नही है। मेरी मा बहुत धीर-गम्भीर थी। उन्होंने मेरे लिए एक यूरोपीयन टीचर मैक मिलन साहब को रखा था। दोनों ने मिलकर मुझे हमेशा नाते-रिश्तेदारो से दूर रखा। मेरे जीवन मे आने वाली तीसरी व्यक्ति तुम्ही हो।"

मुझे आश्चर्य हुआ। वास्तव मे मुझे गौरव महसूस करना चाहिए था, पर ऐसा कुछ नही लगा। मुझे कभी-कभी लगता कि इस मनुष्य को कुछ

घाकड होना चाहिए था। मुझसे निष्ठुर व्यवहार करना चाहिए था। उसे पीना चाहिए था। नाच-गाना देखना चाहिए था। इधर-उधर जाना चाहिए था। तो ही अच्छा होता। मैं उससे झगडा करती और मेरे मन की तडप को कुछ शान्ति मिलती।

आज की परिस्थितियों मे तो मुझे केवल तडपना ही पड रहा था।

मैंने कभी पर्दा नही किया। इस बारे में मैंने पहले दिन ही साफ कह दिया था। साहेब ने कभी जबरदस्ती नही की। किसी रिश्तेदार ने कभी शिकायत की, तो साहेब ने उससे कहा, "वह बी०ए० है, कॉलिज मे पढी है। अब इस प्रकार का अत्याचार हम उस पर नहीं कर सकते।"

साहेब का स्पष्ट उत्तर सुनकर मुझे अच्छा लगा। हमारे घर बहुत से जागीरदार, अफसर तथा बडे-बडे मेहमान आते। मैं उनसे सरल रूप से ही बोलती-चालती तथा व्यवहार करती।

हमारी जागीरदारी जब्त हो गयी थी, फिर भी हमारे पास बहुत जमीन थी, बडे-बडे खेत थे। काफी पैदावार होती थी। हमारे गाव के पाच कोस के घेरे मे कोई पाठशाला नही थी। एक दिन बातचीत मे यह विषय निकला। मैंने स्कूल खोलने की इच्छा व्यक्त की।

साहेब ने कभी भी मेरी किसी इच्छा को नहीं टाला था। उन्होंने यह बात भी मान ली। सब तरह से योजना तैयार कर ली गयी। शादी के बाद पहले दिन आज मेरे मन मे उत्साह था। कुछ कर दिखाने की आशा मेरे सामने थी।

मेरा स्वभाव जन्म से ही कुछ उठा-पटक करते रहने का था। दीदी के और मेरे स्वभाव मे यही अन्तर था। उसे ऐशो-आराम चाहिए था और मुझे काम। दीदी और मा मेरे इस स्वभाव को दरिद्री का लक्षण मानते थे।

हुआ उल्टा ही था। मैं एक बडे जागीरदार की पत्नी बनी थी और दीदी एक छोटे जमीदार के यहा गयी थी। जीजाजी हमारे साहब के दोस्त थे। विपत्ति के समय साहेब ने जीजाजी को कई बार रुपये दिये, पर वापस करने का स्वभाव जीजाजी का था ही नहीं।

अब सारा कार्यभार मेरे हाथ मे आ गया था। मैंने जीजाजी को दो बार समझाया भी। जीजाजी चिढकर बोले थे, "सरला बहन, तुम बेकार

की बातें करती हो। तुम्हारी दीदी को पता चला, तो क्या समझेगी।"

वास्तव म मेरी सारी नाराजगी तो जीजाजी से ही थी। इसी व्यक्ति की वजह से मेरे जीवन की रामायण इस रास्ते मुड गयी थी, नही तो मैं कभी की सुरेश की बन जाती।

सुरेश दिल्ली जा रहे थे। उस समय मैंने उनसे कारण पूछा था। उन्होंने हसकर कहा था, "आकर बताऊगा, अभी नही।"

अब तो सुरेश दिल्ली से आ गये होगे। अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए व्याकुल होने के अतिरिक्त मेरे पास कुछ नही रहा था। इसीलिए इस समय जीजाजी पर नाराज होते हुए मैंने कहा था, "दीदी को तुम क्या, मैं सारी बात बताऊगी, तभी तुम्हारे ऊपर चेक लगेगा।"

"बता दो, बता दो, मैं क्या तुम्हारी दीदी से डरता हू। मैं कोई 'साहेब' नही हू, जो औरत के आगे बिल्ली बना रहू। एक बार मे एक नही, दस औरतो को सभाल सकता हू।"

यह सब सुनने के लिए साहेब वहा नही थे। मुझे साहेब के प्रति प्रेम भी नहीं था, गर्व भी नही था, तो भी जीजाजी के उद्‌गारो से मुझे क्रोध आया। मैंने तेजी से उनके एक चाटा लगाया और चिल्लायी, 'गेट आउट! जिसका खाते हो, उसी को गाली देते हो! खबरदार, अब मेरे घर की सीढी चढे तो।"

घर के दो-चार नौकरो ने यह काण्ड देखा। मेरा यह स्वरूप उनके लिए नया था। पर मुझे उनकी परवाह नही थी। जीजाजी की कृतघ्न-वृत्ति से मुझे धक्का लगा था। बाहर गाव से आने पर मैं साहेब को सब-कुछ बताने वाली थी, पर यह अवसर ही नही आया। शायद जीजाजी ने ही उन्हें कुछ बता दिया होगा। वे आये। ऊचे स्वर मे बोलने का उनका स्वभाव नही था, पर आज कुछ चढी हुई आवाज मे उन्होने पूछा, "कौन-कौन आये थे?"

"जीजाजी आये थे। उनको रुपया चाहिए था—दो सौ।"

'दिय क्या? तुम्हारे पास थे ना?"

"थे। पर दिये नही। मुझे देना नही था और आगे से कभी दूगी भी नही।"

"तुम समझती हो न कि किसको रुपया देने से मना कर रही हो।"

"हां, समझती हू। मेरे जीजाजी को और आपके जिगरी दोस्त को। पर अब मैं किसी को मुफ्त का एक पैसा भी नही दूगी।"

"यह तुम हमसे कह रही हो? हमारी आज तक की प्रथा को क्या इस प्रकार बन्द कर दोगी?"

"हां, कई प्रथाएं बन्द करनी पड़ेगी। सबसे पहले आपका नाम कर आपकी निन्दा करने की।"

"हमारी निन्दा? संभव नही।" साहेब का स्वर कुछ ऊचा हो गया था, पर मैं उनसे भी जोर से बोली थी। मुझे इसी बात का गुस्सा था कि साहेब मेरी बात का विश्वास न करें, मैंने जीजाजी की एक-एक बात उन्हें बतायी। नौकरों को बुलाकर उनकी गवाहियां दिलायी। साहेब इतना ही बोले, "अपने बड़े घराने के व्यवहार को मत भूलो।"

"मुझे कुछ बातें अच्छी नहीं लगती।"

"अपनी प्रतिष्ठा के लिए कभी कुछ सहना भी पड़ता है।"

३

स्कूल के लिए साहेब ने हवेली के पीछे का एक बड़ा चौक मुझे दे दिया था। मैंने वहा कवेलू की एक छोटी सी बिल्डिंग बनवा ली। शुरू मे मुझे बहुत परिश्रम करना पड़ा। घर-घर जाकर बच्चे इकट्ठे करने मे मुझे कठिनाई आ रही थी। मैं उनकी जागीरदारनी थी। अभी तक तो उनके यहा कुछ देने के लिए जाती थी, उनसे मान-सम्मान पाती थी, पर अब मुझे उनके यहा कुछ मांगने के लिए जाना पड़ रहा था। मैं उन्हें स्कूल की कल्पना देती तो वे मेरी ओर विचित्र दृष्टि से देखने लगते। वे समझ ही नहीं पाते थे कि किसी सीधी सादी गरजू मास्टरनी बाई की जगह उनकी भाभी साहेब स्कूल शुरू करेंगी और वहां पढायेंगी। मैं अकेली आसपास के गांवों में जाती। लड़कों के नाम, उम्र आदि की सूची बनाती। लोग आश्चर्य करते। कुछ लोग कानाफूसी करते। कुछ लोग मालकिन को

इतनी छूट देने के लिए साहेब को दोष भी देते।

पर सब कुछ बचाकर भी मैं आगे बढ़ती रही। मेरा मन घर में नहीं लगता था। जीजाजी की उस घटना के बाद साहेब ने उस बारे में [illegible]

स्कूल के लिए परिश्रम में लगी रही। बरसात में भी मेरा काम चल रहा था। दशहरे पर स्कूल शुरू करना था। साहेब कहते, "अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखा करो।"

साहेब की यह बात सुनकर मेरी इच्छा होती कि मैं खूब बीमार पड़ूं। सुरेश को पता चले। वे दौड़कर आएं और मेरा इलाज करें। इस कल्पना में ही मुझे आनन्द मिलता था। मेरा चेहरा चमक उठता। साहेब कहते, "वाह-वाह, क्या तुम्हें इस बात का भी आनन्द होता है कि तुम बीमार पड़ो। तुम्हारी तो सारी बातें ही अजीब हैं।" भोले-भाव से बोलने वाले साहेब पर मुझे दया आती। सोचती, क्या यह अच्छा नहीं हुआ कि मेरे विद्रोही स्वभाव को इतना सीधा साथी मिला, अन्यथा कितनी गड़बड़ होती। दो विद्रोही स्वभाव में तो कभी मेल नहीं होता। मैंने भावुक होकर कहा, "मैं कभी बीमार नहीं पड़ूंगी। कोई काम हाथ में लेकर उसे पूरा करने तक मुझे चैन नहीं मिलता।"

इस पर साहेब हमेशा की तरह अपनी मूछों पर बल देने लगते। मैं अब तक जान चुकी थी कि मन के विरुद्ध कोई बात होते ही उनका हाथ मूछों पर चला जाता था। मैंने धीरे से उनका हाथ दबाया—स्वाभाविक ही। शायद यह मेरा ढोंग भी होगा। पर साहेब इस बात से आनन्दित हो उठे। मुझसे स्कूल के बारे में कई बातें पूछते रहे, फिर एकाएक बोले, "तुम ऐसा करो, राजू बहन को यहां बुला लो। यहां की औरतें उनकी बात मानेंगी। उनके साथ खेली हैं ना।"

दशहरे पर मेरा स्कूल शुरू हो गया। राजू बहन आ गयी थीं। उन्होंने उत्साहपूर्वक खूब काम किया। अपने दो बच्चों को भी इसी स्कूल में भरती कराने का उन्होंने वायदा किया। बच्चों की भीड़ देखकर वे बोलीं, "भाभी साब, इस घर को सभालने के बाद तुमको दूसरी फुर्सत कहां रहेगी।"

"घर में काम ही क्या है। मेरा तो टाइम ही नहीं बीतता।"

"फिर काम बढ़ा लो ना, मुझे बुआ बनने दो।"

उसकी बात का लक्ष्य मेरे ध्यान में आया। मेरे विवाह को कई वर्ष हो गये थे, पर यह बात मेरे हाथ में थोडी ही थी। साहेब से इस बारे में बात करने की मेरी इच्छा नहीं थी।

स्कूल शुरू हुआ। गाव की स्त्रिया समझने लगी कि उनके बच्चों में कोई अन्तर आ रहा है। मैं उन्हें बड़े ध्यान से पढ़ाती थी। बच्चों के साथ उनकी माताओं को भी कुछ सिखाती रहती थी। इसी से मेरे मन में एक कल्पना उठी। मैंने साहेब से कहा, "पूना और बम्बई की तरह मैं यहा भी एक महिला-मण्डल प्रारम्भ करना चाहती हू। विश्वास रखें, आपके पैसे का दुरुपयोग नहीं होगा।"

स्कूल और महिला-मण्डल साथ-साथ चलने लगे। मैं गाववासियो से समरस होने लगी। उनके सुख-दु ख समझने लगी, देखने लगी। ग्रामीण बच्चो एव स्त्रियो मे मेरा मन रमने लगा। अब तो मेरे पास खाली समय रहता ही नहीं था। इसस मैं प्रसन्न भी रहने लगी।

एक दिन भोजन के बाद हम दीवानखाने मे बैठे हुए थे। साहेब गाने के विशेषत शास्त्रीय सगीत के प्रेमी थे। कई बार वे रात को गाने सुनते रहते। उस दिन हम दोनो ही गाने सुन रहे थे। मेरे सामने स्कूल के कागज थे और मैं उनका कुछ हिसाब कर रही थी। स्कूल और महिला-मण्डल मे सम्बन्ध बिठाने की योजना बना रही थी। मेरा सारा ध्यान स्कूल और मण्डल के विस्तार की ओर लगा हुआ था।

मैंने योजना तैयार की। स्कूल के लिए मुझे एक महिला की आवश्यकता लगी—किसी विश्वासी एव जरूरतमद महिला की। कई नाम मेरे ध्यान मे आये। सहज ही साहेब स भी पूछ लिया, "मुझे स्कूल के लिए मास्तरनी चाहिए।"

साहेब ने दीदी के नाम का सुझाव दिया। मुझे आश्चर्य हुआ। साहेब ने कहा, "दीदी के यहा आने से तुम्हारे जीजाजी भी आ जायेंगे। उनके दोनो बच्चे स्कूल जा सकेंगे और जीजाजी को भी किसी काम मे लगाया जा सकेगा।"

मैं हँसी। इसे साहेब का भावुक प्रेम समझूं अथवा जीजाजी से उनका लगाव। फिर भी मैंने हां कर दिया। दीदी आयी। वह मुझसे कई दिनों बाद मिली थी। हमारी गपशप चल रही थी। उसने एकाएक जिक्र छेड़ा, "अरे, तेरी वह मित्र निशा जोशी? याद है क्या? वह घर आयी थी।"

निशा का स्मरण मुझे क्यों न रहता! उसी के कारण तो सुरेश मुझसे मिल सके थे। सुरेश उसके काका थे। मेरा दिल भर उठा। अनुभव करने लगी कि इतने दिन तक मां के पास न जाकर गलती की। मेरी इन सब मित्रों ने मेरा क्या बिगाड़ा था? उनसे मिलने क्यों नहीं गयी? वहां जाती, तो सुरेश से भी तो भेंट होती। उनके सामने अपना मन हल्का कर लेती।

दीदी की बड़-बड़ चालू थी। निशा का विवाह हो गया था। उसे डॉक्टर पति मिला था। लड़का भी हो गया था। वह छोटी छोटी बातें बता रही थी, पर मेरा मन उनमें नहीं था। वह तो सुरेश के पास दौड़ गया था। दीदी ने सुरेश का उल्लेख नहीं किया। मेरी भी कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

दीदी और उसकी सारी गृहस्थी हमारे गांव आ गयी थी। वह भी जमींदारिन थी। इसकी ठसक उसमें कायम थी। उसका मन न दुखाते हुए उसे काम पर लगाना था। स्कूल के जमा-खर्च में मैं अपना वेतन भी दिखाती थी। दीदी को समझाने में इस बात का उपयोग हुआ। जमींदार के घराने में से किसी ने नौकरी नहीं की थी। मैंने दीदी को समझाया कि यह नौकरी नहीं, एक बड़ा काम है।

जीजाजी पक्के शिकारी थे। साहेब कैसे भी हों, पर यह व्यक्ति तो शुद्ध गावड़ेल था। साहब भी शिकार पर जाते थे। एक दिन वे शिकार से आये, तब एक मेहमान साथ में था। मुझे कोई विशेष बात नहीं लगी। मेहमान तो हमेशा आते ही रहते थे। भोजन की मेज पर प्लेटें लगीं और मैंने भोजन का बुलावा भेजा।

सब लोग आकर मेज पर बैठे। मैं जाने ही वाली थी कि साहेब ने आवाज दी। मैं बाहर आयी और अपने स्थान पर ही स्तब्ध रह गयी। मुझे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। वे सुरेश थे। मेरी घबराहट सुरेश के ध्यान में आयी होगी। वे एकदम आगे आये और बोले, 'बाई

साहेब, मैं डाक्टर सुरेश जोशी हूं। साल-भर अमरीका रहा। वापस आया और साहेब से मुलाकात हुई। मैं यहां एक अस्पताल बनाना चाहता हूं। इसके लिए साहेब का उदार आश्रय मुझे मिल गया है।"

मैं सब कुछ सुन रही थी। मैं यह नाटक समझ गयी थी। दीदी मां के पास गयी होगी, उस समय सुरेश ने ही निशा को वहां भेजा होगा। मेरा पता मालूम किया होगा। साहब से पहचान निकाल ली होगी, और...!

अब तो वे मेरे सामने ही बैठे हुए थे। भोजन कर रहे थे। बोल रहे थे। साहेब को बता रहे थे कि दिल्ली जाते ही अमरीका जाने का अवसर किस प्रकार मिल गया। वापस घर आने का भी अवकाश नहीं मिला। मैं सब समझ रही थी कि वे यह सब मुझे ही समझाना चाहते थे। मैं सुरेश के सामने साहेब की उदारता की तारीफ कर रही थी और साहेब कह रहे थे कि आज के मेहमान बहुत होशियार हैं, बहुत अच्छे स्वभाव के हैं।

४

अघटनीय घटित हो गया था। साहेब ने सुरेश को हमारी हवेली में ही ठहराया। दीदी का घर स्कूल के निकट बाड़े में ही था। जीजाजी भी सारी व्यवस्था पर खुश थे। वे समझ गये थे कि मैं व्यवहार में पक्की हूं। मैं हर माह निश्चित धनराशि उन्हें दे देती। साहेब और सुरेश साथ-साथ घूमते रहते। साहेब ने मेरी तरह सुरेश को भी गांव गांव, घर-घर फिराया। अस्पताल का भवन बन रहा था। वह पूरा होने तक सुरेश हमारे ही मेहमान थे। सुरेश धूर्त थे। बीच बीच में मुझसे पूछते, "बाई साहेब, मेरे यहां रहने से आपको कोई कष्ट तो नहीं?"

एक स्थिर नजर उनकी ओर डालने के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं कहती। सुरेश अपनी नीली गहरी आंखों को मपकाने लगते। मेरा ध्यान साहेब की ओर जाता। वे आदत के अनुसार अपनी मूंछें मरोड़ते रहते। मैं साहेब से कहती, "सुना न आपने, डॉक्टर क्या कह रहे हैं!"

"क्या? क्या हुआ?"

साहेब गड़बड़ा जाते। मुझे हंसी आती। मैं कहती, "डॉक्टर कहते हैं कि उनके रहने से हमें कष्ट तो नहीं है। अब आप ही इस प्रश्न का उत्तर दो।"

"छि-छि, डॉक्टर! कष्ट कैसा? हमारे लिए तो यही बहुत बड़ी बात है कि तुम्हारे जैसा फॉरेन-रिटर्न डॉक्टर इस गांव में रहने के लिए तैयार हो गया है। इसके लिए तो हम आपके ऋणी हैं।"

ऐसे थे साहब। पालिश्ड! वेल बिहेव्ड! पर इसमें सहृगी मुलम्मा नहीं था। साहेब को इसका भी गर्व नहीं था कि वे एक बड़े जागीरदार हैं। उनका रूप, उनकी गवारू मूछें और खिसियायी हंसी छोड़ दी जाये, तो उनमें ऐसी कोई बात नहीं थी, जिससे मुझे अप्रीति हो। कभी-कभी मैं सोचती कि सुरेश से मेरी पहचान न होती, तो मैं इस व्यक्ति के साथ समरस हो जाती। अब तो सुरेश नजरों के सामने घूमते थे। मेरे मन की तड़प क्षण प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी।

इन दिनों मेरे मन का संघर्ष सीमा पर पहुंच गया था। साहेब ने मुझे पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी। दूर-दूर तक मेरा नाम फैल गया था। लोगों का दावा था कि मैं सारी प्रजा से आवश्यक परामर्श लेती हूं। गांव में ग्राम पंचायत थी। साहेब उसके काम में दिलचस्पी लेते थे। किसी बड़े मेहमान के आने पर उसकी व्यवस्था हमारे ही यहां होती। एम०एल०ए०, एम०पी० से लेकर मन्त्री तक हमारे घर आते रहते। उनकी मेहमानदारी होती। पर इसमें कोई विशेषता नहीं होती थी। हमारे इलाके का काम सुचारु था, निर्मल था। साहेब से सब प्रेम करते थे। उनका चरित्र निर्मल था। कभी-कभी उनके आगे मुझे स्वयं पर ही लज्जा आती कि इस व्यक्ति के बराबर मैं सुरेश का विचार करती हूं। उनके खाने-पीने की व्यवस्था मैं स्वयं देखती थी। वे इससे बहुत खुश होते थे। सुरेश के सामने कहते, "हमारी सरलाबाई बहुत होशियार है। आसपास के सारे इलाके में उनका नाम फैल गया है।"

सुरेश इस प्रकार सुनते रहते, जैसे मेरे बारे में उन्हें कोई जानकारी ही न हो।

सुरेश का हमारी हवेली में रहना मुझे भा रहा था। दिन में कभी

हम थोडा बहुत आपस मे बोल लेते थे। इसी से मुझे समाधान मिल जाता था। आते-जाते सुरेश की दृष्टि मुझ पर पड जाती, यही मेरे लिए बहुत था। मैं प्रसन्न रहने लगी। सुरेश और मेरे सम्बन्धो की जानकारी यहा किसी को नही थी। केवल हम दोनों ही एक-दूसरे को पहचानते थे, जानते थे।

उस रात मूसलाधार वर्षा हो रही थी। गाव की छोटी-सी नदी में बाढ आ गयी थी। उस नदी का लकडी का पुल पानी मे डूब गया था। नदी के उस पार भी काफी बस्ती थी। दीदी भी वही रहती थी। इस पार हमारी हवेली, एक सरकारी कचहरी, दो-चार छोटी हवेलियां थी। सुरेश हमारी हवेली के अगले भाग मे रहते थे। उनका अस्पताल हवेली के पीछे के बड़े बाड़े मे बन रहा था। साहेब ने सुरेश को यह स्थान नाम-मात्र की लीज पर दिया था। इमारत की लकडिया हमारे ही बगीचे स आती थी। ये लकडिया पानी मे भिगोने के लिए नदी किनारे रखी थी। इस समय वे उफनती हुई नदी मे डोल रही थी। नदी का पाट लगभग आधा फर्लांग फैल गया था। उसने रौद्र रूप धारण कर रखा था। मेरे मन मे भय समा रहा था कि पानी गाव में घुस जायेगा, तो कैसा अनर्थ हो जायेगा। साहेब भी चिन्तित थे।

नौकरो न कॉफी की केटली लाकर रखी। मैंने तीन कपो में कॉफी तैयार की। साहेब के हाथ मे कप देते हुए मैंने कहा, "आप कितने चिन्तित दिखायी दे रहे हैं, ललाट पर पसीना आ रहा है। गर्म कॉफी लो, अच्छा लगेगा।"

साहेब ने कॉफी का कप मुह से लगाया ही था कि सुरेश चिल्लाये, "बाप रे, पानी गाव में घुस गया।"

साहेब ने हाथ का कप नीचे रखा। वे दौडते हुए नीचे गये और नौकरो को आवाज देकर बोले, "मैं उस पार जाता हू। गाव मे बहुत बस्ती है।"

"पर आप जाएगे कैसे?" मैंने घबराकर पूछा। वास्तव मे इस समय मुझे गाव स ज्यादा साहेब की चिन्ता हो रही थी।

"घोडा ले जाता हू। बग्घी का उपयोग तो इस समय नही हो पायेगा।"

"साहेब, बग्घी तैयार कराओ। आपके साथ मैं भी आ रहा हू।"

साहेब के साथ सुरेश और मैं दोनो निकले। बग्घी पानी मे से पार कैसे जा सकी, भगवान ही जानता है। गाव मे पानी अधिक नही घुसा था।

हम सब दीदी के घर गये। बरसात की इस ठंडी हवा मे जीजाजी ने वहा पार्टी जमा रखी थी। हमारी हवेली पर भी कभी कभी इस प्रकार की पार्टिया होती रहती थी। पार्टी की व्यवस्था करने की आदत मुझे थी ही। मैं अन्दर आयी। दीदी पुलाव बना रही थी, मैं उसकी मदद करने लगी। साहेब ऐसी पार्टियों मे अक्सर भाग नही लेते थे। साहेब पर मुझे विश्वास था, पर आज मुझे चिन्ता हो रही थी। कुछ दिनो पूर्व हमारे घर एक विधायक आये थे। उस समय पार्टी के बाद साहेब को सुरेश की बहुत चिन्ता रखनी पड़ी थी। उन्होंने सुरेश को लाकर बिस्तर पर सुलाया था।

दीदी मुझसे पूछ रही थी, "सरला, देऊं तुझे थोडी सी? इस ठंडक मे अच्छा लगेगा, नदी पार करके आयी है ना।"

मैंने दीदी से पूछा, "तुझे किसने बताया कि मैं लेती हू? दीदी, तू बदल गयी है, मैं नही।"

दीदी कुछ सहम गयी, "नही रे, मैं समझी इतनी बड़ी जागीरदारिन है, पर्दा नही करती, बडे-बडे अफसरो के साथ खाती है।"

"यह सब मैं करती हू, किन्तु स्वयं को सभालकर रखती हू। मैं ही अगर अपना होश छोड दू, तो यह स्टेट बर्बाद होते देर नही लगेगी।"

वास्तव मे मुझे दीदी से यह सब कुछ नही कहना था, पर आज पता नही मैं क्यो बेचैन थी? बाहर वर्षा, हवा के झकोरे और मन मे बेचैनी। मेरा मन उद्विग्न हो रहा था—कारण समझ नही पा रही थी।

बाहर लोग भोजन करने बैठे। सब रग मे आ रहे थे। दीदी और मैं अन्दर भोजन कर रहे थे। दीदी ने राजसी पुलाव बनाया था। पुलाव मुझे यो भी बहुत पसन्द था, पर आज की मनस्थिति मे मुझसे एक ग्रास भी नही खाया गया।

दीदी ने मजाक किया, "क्या साहेब आज बहुत देर से इन्तज़ार करा रहे हैं?"

मैं उसके कथन का अर्थ समझ गयी थी। ऐसी कोई बात थी नहीं, पर मैंने उत्तर नही दिया।

वर्षा रुकी। हवा का वेग भी कम हुआ। नदी का पानी काफी उतर गया। काफी रात हो गयी थी। बढ़िया चादनी बिछी हुई थी। पेडो से पानी की बूदें टपक रही थी। पार्टी मे शामिल गाव के लोग घर चले गये थे। मैं इन्तजार कर रही थी कि साहेब आकर कहेगे कि अब घर चले।

बहुत देर हो गयी, तो भी साहेब अन्दर नही आए। जीजाजी का उठ पाना तो सभव ही नही था। मैं पान के बीडे तैयार कर रही थी। बीडे लेकर मैं बाहर आयी। साहेब वहा नहीं थे। सुरेश ही अकेले बैठे-बैठे सिगरेट पी रहे थे।

मैंने पूछा, "साहेब कहा हैं?" वे हसे। मुझे उनकी हसी मे कुछ अटपटा लगा। मैंने फिर से वही प्रश्न पूछा। सुरेश ने एक कोन की ओर सकेत किया। मैंने देखा साहेब वहा आडे-टेढे पडे थे। क्षण भर मुझे अपनी आखो पर ही विश्वास नही हुआ। मैं जल्दी से उनके पास गयी। मुझे याद नही आ रहा था कि उन्होने कभी इतनी शराब पी हो। मैंने सुरेश स पूछा, 'यह क्या ?"

"कहा क्या ? जरा सोता हू' कहकर सो गये है। मैं उनके उठने की राह देख रहा हू।"

मुझे सुरेश की बात कुछ अच्छी नही लगी। मैंने कहा, 'पर वे तो कभी इतनी नही पीते, तुमको भी अच्छी तरह पता है। अब घर कैसे जायेंगे?"

'मेरे सामने भी यही प्रश्न है। अच्छा, तुम यही रुक जाओ। मैं तुकाराम स बग्घी तैयार करने को कहता हू।"

"नही-नही, साहेब को हम इसी हालत मे घर ले जायेंगे। यह घटना किसी के ध्यान म नही आनी चाहिए। साहेब को अच्छा नही लगेगा।"

हमने साहेब को बग्घी म सुला दिया। मैं और सुरेश सामने की सीट पर बैठे। कई वर्षों बाद हम इस प्रकार पास-पास बैठे थ। साहेब बडबडा रहे थे—डॉक्टर, डाक्टर। घोडो के टापो की लयबद्ध आवाज आ रही थी। ठडी हवा से शरीर रोमाचित हो रहे थे। साहेब शान्त थे। मैं चुप बैठी थी और सुरेश सिगार का धुआ उगल रहे थे। सारा वातावरण मेरे लिए असह्य

हो रहा था। बग्घी धीरे-धीरे चल रही थी। साहेब ने करवट ली। मैं डर गयी कि कहीं वे गिर न पड़ें। मैं एकदम आगे झुकी और उसी समय सुरेश भी। अनजाने ही हम दोनों के हाथ एक-दूसरे के ऊपर आ गये। मैंने झटके से हाथ खींच लिया। उस गीली हवा में भी शरीर पर पसीना छूटने का आभास हुआ। सुरेश के तनिक-से स्पर्श के लिए मैं कितनी व्याकुल थी, पर इस समय इस शान्त अवस्था में हुआ अनजाना स्पर्श भी मुझे भयभीत कर रहा था। सुरेश की ओर देखने की हिम्मत नहीं हो रही थी। मेरे हाथ-पाँव में कपकपी छूट रही थी।

मेरी अवस्था सुरेश के ध्यान में भी आयी होगी। उन्होंने सिगरेट बाहर फेंक दिया और अपना दाहिना हाथ सहज रूप से मेरी पीठ के पीछे की सीट पर टिकाए रखा। मेरे जूड़े और गर्दन से उनके हाथ का स्पर्श हो रहा था। मुझे सुख मिल रहा था, और भी कुछ अनुभव कर रही थी। क्या ? वह नहीं सकती।

सुरेश की ढिठाई धीरे-धीरे बढ़ने लगी। उनकी उंगलियाँ मेरी गर्दन से छेड़छाड़ करने लगीं। मैंने उनकी ओर देखा, वे मेरी ओर देख रहे थे—उन्हीं नीली गहरी आँखों से। मेरे अपनी ओर देखते ही वे हँस। उनकी हँसी मुझे कुछ अलग ही लगी। मैंने चमककर साहेब की ओर देखा। वे अभी भी उसी अवस्था में थे। मैंने अपने सूखे होठों पर जीभ फेरी। सुरेश ने देखा और उसी क्षण उन्होंने अपने होंठ मेरे होठों पर टिका दिये। उनकी श्वास में मद्य और सिगरेट की उन्मादक सुगन्ध आ रही थी। इस चुम्बन से मैं अपने आपको भूल बैठी, साहेब को भूल गयी। मेरा सारा शरीर नाचने-सा लगा। किसी तरह की कोई जबर्दस्त इच्छा होने लगी। मैंने सुरेश के कन्धे पर सिर टिका दिया और आँखें बन्द कर लीं।

सुरेश ने अपने हाथों में मेरा कन्धा दबा दिया। इस स्पर्श ने मुझे कई संदेश दे दिये—धैर्य तथा आश्वासन के।

वह क्षण निराला ही था। वह चाँदनी मुझे मदहोश कर रही थी। मुझे धैर्य नहीं हो रहा था। लग रहा था कि मैं कई दिनों से भूखी हूँ और मेरे सामने षट्रस व्यंजन की थाली रखी हुई है। सुरेश के आलिंगन के लिए मैं व्याकुल हो रही थी। एक-एक क्षण मुझे अधीर बना रहा था।

बग्घी हवेली के पास आयी। स्पर्श का क्षणिक सहवास भी समाप्त होने वाला था। नही-नही, मैं ऐसी भूखी नही रह सकती। लग रहा था कि सारे बन्धन तोडकर इस हवेली से निकल पडू। सुरेश के हाथ मे हाथ देकर कही के लिए भी चल पडू। नया ससार बसाऊ—स्वतत्र, मनपसन्द।

पर यह सभव नही था। अगले ही क्षण मैं अपनी असमर्थता समझ चुकी थी। मैंने अतिशय व्याकुल दृष्टि से सुरेश की ओर देखा। उनकी आखो मे भी वही भावुकता थी। हम दोनो नीचे उतरे। तुकाराम की मदद से साहेब को लाकर उनके पलग पर सुलाया। सुरेश आज प्रथम बार हमारे शयन-कक्ष मे आये थे। स्वभावानुसार मैंने उसे स्वच्छ एव सजा-सजाया रखा था, पर इस कक्ष मे मुझे कभी रस प्राप्त नही हुआ। सुरेश की उपस्थिति मे इस कक्ष की नीरसता मुझे और भी चुभी। मैंने साहेब को शाल उढा दी। साहेब का पलग बडा था। उस पर नायलोन की मच्छरदानी थी। उससे समकोण पर लगा हुआ मेरा सादा तख्त था। मुझे मच्छरदानी मे नीद नही आती थी। सुरेश मेरे बिस्तर पर बैठे थे। तुकाराम अभी भी दरवाजे पर खडा था। वह घर के रिवाज के अनुसार डॉक्टर को अपने कमरे तक पहुचाने के लिए वहा रुका हुआ था, पर मेरे हृदय की धडकन अभी नही रुकी थी।

सुरेश ने एक बार मेरी ओर देखा, फिर तुकाराम से कहा, "जरा पानी ला। साहेब को एक खुराक दे देता हू।"

बेचारा तुकाराम पानी लेने के लिए दौडता हुआ चला गया। सुरेश उठे। उन्होंने मुझे बाहुपाश मे लेते हुए मेरे होठ पर होठ टिका दिये। मेरी वासना अधिक तेज हो गयी। सारा शरीर जलने-सा लगा। सुरेश दूर हटे, पर मुझसे अब यह सहन नही हो रहा था।

तुकाराम पानी लेकर आया। सुरेश ने उसे दवा का बैग लाने के लिए फिर से भेज दिया। फिर भर्राई आवाज मे मेरे कान मे कहा, "मैं कमरे में जाता हू। तू आ, मैं राह देखूगा।"

मैं तो मत्रमुग्ध हो ही गयी थी। ना, कहना सम्भव ही नही था। सारी विवेक बुद्धि मुझसे दूर जा चुकी थी। मैं मोह मे, वासना मे ओतप्रोत थी। मुझे सुरेश के अलावा कुछ दिखायी नही दे रहा था।

तुकाराम बैग लाया। सुरेश ने साहेब को दवा दी और तुकाराम के साथ चले गये। मेरे पावों में जैसे शक्ति ही नहीं रही। सिर घूम रहा था। सुरेश के शब्द कान में फिर रहे थे। पर मन की आग अब इतनी तीव्र नहीं लग रही थी। मैं स्वय को ही जला रही थी। मैंने वह सारी रात अपने बिस्तर पर बैठे-बैठे ही निकाल दी। साहेब की ओर देखने की हिम्मत तक नहीं की।

५

उस रात-भर साहेब की नींद नहीं खुली। और मुझे रात-भर नींद नहीं आयी। साहेब दूसरे दिन दस बजे तक भी नहीं उठे, तो मैंने सुरेश को बुलाने के लिए नौकर भेजा। उसने वापस आकर बताया, "डॉक्टर की तबीयत ठीक नहीं है। वे ओढ़कर सोये हुए हैं।"

मैं चिन्तित हो गयी, पर सुरेश के पास जा भी नहीं सकती थी। साहेब के किसी भी क्षण उठ जाने की सम्भावना थी। इस घर के कुछ रिवाज थे और मैं उनका पूरी तरह पालन करती थी। लोगों के सामने अपनी एक प्रतिमा मैंने बना रखी थी। सुरेश से मेरा मोह मेरा एक गुप्त खजाना था। उसकी चाबी मेरे हाथ में थी। ताला खुलता था, बन्द होता था, पर द्वार को सपाट खोल देने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी। मैं अन्दर-ही-अन्दर घुटती थी।

उस दिन की घटना की पुनरावृत्तियां होती रहीं। सुरेश जब भी अवसर मिलता, मेरा चुंबन ले लेते और कहते, 'कितने दिन राह दिखाएगी। मैं तो तेरे लिए ही यहां आया हूं।"

मैं बोल नहीं पाती थी। मेरा मन दुविधाग्रस्त हो गया था। मैंने सुरेश से प्रेम किया था, कर रही थी। बहुत पहले से उनके सहवास की कल्पना में रंगी हुई थी। इस विवाह से यह कल्पना भग्न हुई थी। अब फिर से उसे पूरा करने का अवसर हाथ में था। मुझमें साहस नहीं था। कहां जाऊं, क्या करूं, मन की जलन कैसे बुझाऊं—कुछ समझ नहीं पा रही थी।

घर के सारे व्यवहार यन्त्रवत् कर रही थी। उसमें गलतियां होती थी। साहेब कहते, "तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं दिखायी देता। बहुत काम करती हो, थोड़ा आराम करो।"

मैं केवल हंस देती। उनसे कहू, तो भी क्या? अपने मन की बेचैनी शान्त करने के लिए ही तो काम में जुटी रहती थी। इन दिनों काम में भी मन नहीं लगता था। एक दिन साहेब सुरेश को लेकर बैठरूम में आये। उनको वहां देखकर मुझे गश-सा आ गया। सुरेश ने मुझे सम्भाला। साहेब पानी मंगवाने बाहर गये। सुरेश ने मेरे कान में कहा, "पागलपन मत कर।"

साहेब आये। वे बहुत घबराये हुए थे। यह मनुष्य मुझे पसन्द नहीं था, तो भी उसका रोब मेरे ऊपर हावी लगता था। साहब मुझसे प्रेम करते थे, मैं कई बार मन से यह मान चुकी थी। इस समय उनकी ओर देखने में भी मुझे शर्म महसूस हो रही थी। मैं क्या करूं? मेरा मन उनमें नहीं था और इस समय तो सुरेश ने मद का प्याला मेरे होठों से लगा दिया था। मेरे हाथ में ही था कि पिऊं अथवा बिखेर दूं। कुछ तय नहीं कर पा रही थी।

कुछ तो करना ही था। इस पशोपेश में जीना मेरा स्वभाव नहीं था। मैं हिरन की तरह चौकड़ी भरकर दौड़ना चाहती थी। पर दुर्भाग्य से मेरा उन्मुक्त जीवन बन्दी बन गया था। मेरे अन्दर का पक्षी पुनः उड़ने के लिए अधीर हो चुका था। अपने चारों ओर बुने हुए जाल को तोड़ फेंकने के लिए वह व्याकुल हो रहा था।

साहेब ने घबरायी हुई आवाज में सुरेश से कहा, "प्लीज डॉक्टर, जरा इन्हें ठीक से देखो। इन दिनों काफी अस्वस्थ हैं। रात-रात-भर इनको नींद नहीं आती। घर में डॉक्टर रहते हुए यह हालत समझ में नहीं आती। जरा इन्हें अच्छी दवा दो।"

साहेब को विश्वास दिलाते हुए सुरेश बोले, "आप चिन्ता मत करो, सब ठीक हो जायेगा।"

सुरेश मेरी जांच कर रहे थे। उनके हाथ मेरे अंगों पर फिर रहे थे। उस स्पर्श का अनुभव केवल मैं ही कर पा रही थी—उसमें आह्वान था, साहेब के सामने ही। मुझे पुनः गश आ गया। मेरी आंखें बन्द हो गयीं। साहेब दौड़कर मेरे पास आये। सुरेश ने मेरी नाड़ी हाथ में ले रखी थी।

मेरा सारा शरीर थरथरा रहा था। इच्छा हो रही थी कि उठकर यहां से कहीं भी भाग जाऊं, पर शरीर में हलचल करने की भी शक्ति नहीं थी।

उस दिन से ही मुझे इन्जेक्शन लगने लगे। सुरेश रोज आते, साहेब के सामने मुझे सूई चुभाते—मेरे शरीर में असंख्य सुइयां चुभने लगती।

स्कूल की सारी जिम्मेदारी दीदी ने ले ली थी। सुरेश का अस्पताल भी जल्दी ही शुरू होने वाला था। मैं स्वयं को शान्त करना चाहती थी, पर सम्भव नहीं हो पा रहा था। इन दिनों तो मां बनने की भी तीव्र इच्छा होने लगी थी।

मेरी बीमारी की खबर पाकर राजू बहन आयी। मुझे समाधान मिला। वह खोद खोदकर मुझसे मेरे मन की बात पूछती थी, पर मैं मन की यातना प्रकट नहीं कर पाती थी। मेरी आंखें भर आती थीं। मेरी अस्वस्थता का अर्थ उसने अपने अनुसार लगाया। उसने साहेब से कहा, "दादा साब, भाभी साब को बम्बई ले जाओ। किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाओ। फूल के बिना बेल और बच्चे के बिना स्त्री की हालत एक ही होती है।"

साहेब ने अपनी बहन की बात समझी, सुरेश से सलाह ली और हम सुरेश के साथ ही बम्बई गये। मेरी जांच हुई, दवा चालू हुई।

एक बार साहेब किसी गांव गये थे। दोपहर का समय था। नौकर ऊंघ रहे थे। सुरेश ऊपर मेरे कमरे में आये। अब उनके लिए कहीं भी आने-जाने में कोई बाधा नहीं थी। मैं लेटी हुई थी। उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "सरल, क्यों मन को यातना दे रही है? इस औषधि का कोई उपयोग नहीं। तेरी बीमारी की दवा तो मेरे पास है।"

सुरेश इतना बोलकर ही नहीं रुके, उन्होंने आवेग के साथ अपने होंठ मेरे होंठों पर टिका दिये। मेरी इतने दिन से निष्प्राण संवेदनाएं जाग-सी उठीं। मेरे हाथों ने अपने आप ही उनको आलिंगन में ले लिया। हमारी सांसें एक दूसरे से मिल गयीं।

मुझे संजीवनी प्राप्त होने का अनुभव हुआ। ऐसा सुख, ऐसी तृप्ति मैंने कभी प्राप्त नहीं की थी। मैं सुरेश से बार-बार कह रही थी, "यह

सब अनोखा है, अनुपम है।'

सुरेश केवल हंस रहे थे, जैसे मुझे चिढाकर कह रहे हो, "उसी समय मेरी बात मानी होती तो ?"

उस समय सुख के सर्वोच्च शिखर पर अवश्य पहुंची, पर वे क्षण समाप्त होते ही मेरी अवस्था अत्यन्त विलक्षण हो गयी। मैं विद्रोही थी। मुझे स्वय के स्वत्व का ज्ञान था। यह सब सही था, तो भी मेरा मन स्वय को दोषी पा रहा था। लगता था, मेरे हाथ से कोई भयकर बात हुई है। मेरे सामने पाप पुण्य का प्रश्न नही था। मेरा प्रामाणिक मत था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने सुख की प्राप्ति का अधिकार था। मैं महिला-मण्डल म स्त्रिया की स्वतन्त्र भावना को हवा देती थी, पर आज जो कुछ हुआ, उससे मेरा स्वय का मन अस्वस्थ था। मेरे सामने प्रश्न था कि इस घर मे रहू अथवा नही। मैंने एक सज्जन व्यक्ति की प्रतारणा की थी। धोखा देना मेरा स्वभाव नही था। मेरी वेदनाए प्रबल हो रही थी। मैं रोती रहती थी। कुछ दिन निकल गय।

साहेब दिल्ली जाने वाले थे। वे चुनाव लडने वाले थे। मेरे विश्वास के आधार पर ही वे चुनाव मे खडे हो रहे थे। कहते थे, "तुम और डॉक्टर सहायता करोगे, तो जीत निश्चित है।"

उनका विश्वास कितना बडा था। ऐसे समय म मैं स्वय पर नाराज होती थी। चाहती थी कि साहेब के सामने खुले दिल से सब कुछ स्वीकार कर लू, पर दूसरे ही क्षण यह विचार रद्द हो जाता था।

साहेब दिल्ली गये। मैं घूमने लगी। राजू बहन अपने घर चली गयी। मैं अकेली बैठी रहती, स्कूल जाती, काम करती, पर मन कही नही लगता। सुरेश और साहेब के बीच मेरे मन की रस्साकशी चल रही थी। सुरेश के प्रति आकर्षण बढ रहा था। और साहब के बारे म मन के मृदु भाव कम नही हो पा रहे थे। साहेब की प्रतिष्ठा दूर-दूर तक थी और यही प्रतिष्ठा मेरी वेदना बन गयी थी।

उस रात मैं अकेली बेचैन हो रही थी। यह बेचैनी अन्य किसी के लिए नही सिर्फ मेरे लिए ही थी। मेरा मन मेरे लिए ही आक्रन्दित था। यह नाटक, दिखावा मैं क्यो कर रही थी ? सुरेश के मोह मे पडते ही मैं साहब

का घर छोडकर क्यों नही चली गयी थी ? सुरेश ने भी यह प्रस्ताव क्यों नही रखा ?

मैं सुरेश का ही विचार करती थी। -साहेब के सामने वे एक विचित्र पर्दे की ग्राड मे व्यवहार करते थे। साधारण बोलचाल मे भी उन्होंने कभी भी मुझसे कोई लगाव नही दिखाया। वे ढोंग करते थे—कैसे कर पाते थे ? समझ नही पाती थी।

इसी बेचैनी के बीच तुकाराम ने आवाज दी। मैंने दरवाजा खोला। तुकाराम घबराया-हुआ सा सामने खड़ा था। कापते हुए उसने कहा, "जीजाजी साब ने सदेश भेजा है कि दीदी साब की हालत खराब है।"

दीदी के दिन चढ गये थे। मैंने सलाह दी थी कि वह अस्पताल मे जाये। पर उसने नही माना। कहा, "पहले दो घर मे ही हुए हैं, यह भी हो जायेगा।"

दीदी का बच्चा टेढ़ा हो गया था। सुरेश एक ओर मालिश करके उसे एक ओर सीधा करने का प्रयास कर रहे थे। सभी को साहस बधा रहे थे। उस समय वे मुझे देवदूत-से लगे—दीदी के प्राणरक्षक देवदूत।

दीदी का प्रसव होने मे सुबह हो गयी। जीजाजी को आवश्यक निर्देश देकर हम बाहर निकले। दोनो ही थक गये थे। मैं सुरेश के पीछे मोटर-साइकिल पर बैठी। रास्ते पर आवागमन शुरू नही हुआ था। मैं सामने देख रही थी। हमारी हवेली दिखायी दे रही थी। उसकी मेढी पर दो कबूतर एक दूसरे के चिपटे हुए बैठे थे।

मैं चुप थी। सुरेश सीटी बजा रहे थे। वे बीच मे ही बोले, "तेरे जागीरदार कब आने वाले हैं ?"

"तुम्ही को मालूम होगा। बताया भी तुम्ही को होगा।"

"सरू, एक बात पूछू ?"

"जागीरदार के बारे में ?"

"नही, अपने बारे मे। मैं उस समय गाव मे होता तो··· मेरे साथ आ जाती ? करती इतना साहस ?"

मुझे वे दिन याद आये। सुरेश नही थे, तो भी मैंने घर से भागने का प्रयास किया था। मैंने सब कुछ बताया। मेरी हालत, बाबा द्वारा लिया

दहेज, पीहर से मेरा सम्बन्ध-विच्छेद, सभी बातें मैंने विस्तार से साथ सुनायी।

सुरेश ने मोटर साइकिल रोक दी। एक रास्ते की ओर देखते हुए उन्होंने कहा, "सही बताऊं यह रास्ता यहां से बहुत दूर तक जाता है, कभी-कभी लगता है कि तुझे लेकर निकल जाऊं।"

"फिर ?" सुरेश ने मेरे मन की ही तो बात कही थी।

"पर तेरा पति बहुत ही सज्जन है। उसका मेरे ऊपर कितना विश्वास है।"

मुझे हंसी आयी।

"क्यों हंसी ?"

"उस विश्वास की रक्षा तुमने कितनी की है, यह देखकर।"

"ठीक है, पर मैं भी मनुष्य ही हूं। तेरे सामने मेरा विवेक समाप्त-सा हो जाता है। वहां अमरीका में था, तब भी तेरा ध्यान नहीं छूटता था। चैन नहीं मिल रहा था, इसलिए वापस आया। तेरे विवाह का पता चला। कहीं खो जाने के लिए इस गांव में आ निकला और यहां तुझसे मिलना हो गया।"

"अर्थात् तुम मेरा पीछा करते हुए नहीं आये थे। मुझे लगा .."

"नहीं। कहीं भी जाकर काम में खो जाने के लिए ही यहां आया था।"

"अब आगे क्या विचार है ?"

"यही बताने के लिए यहां रुका हूं, पर हिम्मत नहीं हो रही।"

"तुम जैसा व्यक्ति ऐसी बात कहे, तो..."

"मरल ! मुझ पर व्यंग्य मत कर। मैं जानता हूं तू ब्लट है, पर हर व्यक्ति पर किसी का प्रभाव तो पड़ता ही है।'

"तुम पर किस का प्रभाव पड़ा है ?"

"तेरे जागीरदार का। वह व्यक्ति बहुत भला है। तेरे मोह में मेरा मन उन्मुक्त होता है..."

"तुमने जो कुछ किया, उसमें तुमने उनको धोखा दिया है, तुम्हें ऐसा नहीं लगता ?"

"नही, यह धोखा नही था। यह मेरे प्रेम की विजय थी। तेरी आसक्ति का क्षण था। उस क्षण मुझे कुछ दिखायी नही दे रहा था, केवल तू-ही-तू थी। मैंने स्वय को भी धोखा नही दिया, लेकिन तू आज भी स्वय को धोखा दे रही है।"

"इस पर मेरा वश नही। मेरी वृत्ति तुम्हारे जैसी नही है। मैंने यहा आते ही अपनी नाराजगी स्पष्ट शब्दो मे साहेब के सामने प्रकट कर दी थी। उनके प्रति मुझे प्रेम नही है, उनसे लगाव नही है, तो भी उनको छोडकर जाने का विचार, प्रयास करने पर भी मन मे नही जम पा रहा।"

"तूने ऐसा विचार किया है ?"

"कितनी ही बार। तुमसे मिलने से पूर्व ही। अब भी इच्छा होती है कि तुम्हारे साथ नही दूर चली जाऊं। अपना स्वय का अलग ससार बसाऊ।"

बोलते-बोलते मैं रुकी। सुरेश स्थिर निगाह से मेरी ओर देख रहे थे। मेरा हाथ अपने हाथ मे लेते हुए बोले, "अब भी हम अपना ससार बना सकेंगे—यहा, इसी हवेली मे। मुझे तू चाहिए और तुझे मैं। पर हम दोना के बीच मे एक प्रबंध जाल बन चुका है। अपने-अपने स्थान पर रहकर ही हम अपना सुख प्राप्त करें। सरल ! मैंने तुझे एक बात अभी तक नही बतायी है—तु मा नही बन सकेगी ?"

'क्यो ? क्या कमी है मुझमे ?"

"तुझम नही, उनम।"

"क्या ?"

वास्तव मे मुझे एक धक्का ही लगा था। इतने वर्षों तक मुझे कभी यह बात मालूम नहीं हुई थी। मैं रोने लगी। हृदय फटने लगा।

सुरेश हल्के हाथ से मुझे दुलार रहे थे। उनके स्पर्श का ज्ञान मुझे नही रहा। मैं सारे ससार से अलग—अकेली-अकेली हो गयी थी।

मैंने सुरेश से पूछा, "उन्हे पता है ?"

'होगा। तेरे जीजाजी उस दिन खुले-आम ही यह बात कर रहे थे। उस समय साहेब का चहरा वेदनायुक्त हो गया था।"

मुझे जीजाजी के उस दिन के शब्द याद आ रहे थे। उन्होंने इसी तरह की कोई बात कही थी। साहेब को उन पर नाराज होना चाहिए था, किन्तु इसके विपरीत उन्होंने जीजाजी को निकट बुला लिया था। मैं समझी थी कि साहेब दीदी की भलाई के लिए ही यह कर रहे हैं। क्या का यह सारा ढोंग क्यों था ? स्वय का दोष छिपाने के लिए।

मेरा रोना रुक गया। इतने दिन तक मैं इस भावना से व्याकुल थी कि मैंने साहब को धोखा दिया है। हमेशा सोचती रहती थी कि कौन-सा प्रायश्चित्त करू, पर अब यह भावना समाप्त हो गयी।

मैंने अपना विश्वास पक्का करने के लिए सुरेश से पूछा, "क्या हुआ उस दिन ?"

"बताना जरूरी है क्या ?"

"हा, यह मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है।"

"सभी एक विशेष मूड में थे। एक-दूसरे का मजाक कर रहे थे। जीजाजी के यहा आये मेहमान रसिक थे। उन्होंने आसपास के दो-चार नाम लेकर साहेब से पूछा था—आपकी तो वहा पहुच होगी ? साहेब ने उत्तर नहीं दिया। जीजाजी ने हसकर कहा, 'हमारे साहेब इस बारे में कोरे हैं। अभी इनके वारिस का जन्म भी कहा हुआ।' मैं समझा था कि साहेब चिढेंगे। पर..." बाद की सारी बात मुझे पता थी। मुझे सारी परिस्थिति से घृणा हो आयी। साहेब से बदला लेने की इच्छा प्रबल हो उठी। कैसे ? इसी विचार में मैं डूब गयी।

सुरेश कुछ कह रहे थे, पर मुझे कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। सुबह की ठंडी हवा, उगते सूर्य की सुन्दर लाली मुझे सुख नहीं दे पा रही थी। मेरे अग-अग से आग निकल रही थी।

६

साहेब दिल्ली से आये। बहुत खुश थे। उन्हें विधान सभा का टिकट मिल गया था। हमारी हवेली पर चुनाव की धूम मच गयी। सुरेश ने साहेब के गले में हार पहनाया था। मैं उनका नाटक देखकर कसमसा रही थी।

साहेब दिल्ली से मेरे लिए कुछ साड़िया लाये थे। पैकेट मेरे हाथ मे देते हुए कहा, "ये खास करके तुम्हारे लिए लाया हू। अब तुम्हे बहुत घूमना पड़ेगा। अब तुम्हारी होशियारी की असली परीक्षा होगी।"

"वह तो कभी की हो गयी, आपके सहवास मे।"

"क्यो? हमारी कोई गलती हुई है क्या?"

साहेब की मीठी बात का मेरे ऊपर कोई असर नही था। मैंने मुह मोड लिया। वे बड़े प्रेम से मेरे पास आये और मेरी ठोडी पकड़कर कहा, "वाह, हम इतने दिन मे आये है और आप इस तरह हमारा स्वागत करेंगी?"

"स्वागत की ऐसी कौन-सी बात है?"

मेरा आक्रोश उग्र हो गया था। इच्छा हो रही थी कि इस व्यक्ति को सबके सामने नगा कर दू। मेरा यह स्वरूप उनकी समझ मे नही आ रहा था। वे जानते थे, मैं विद्रोही हू, पर आज तो कुछ अलग ही बात थी।

उस दिन उन्होने भोजन के लिए सुरेश को भी आग्रहपूर्वक रोक लिया। और भी दो-चार लोग थे। चुनाव की गपशप चल रही थी। उनके विरुद्ध गाव का ही एक मारवाडी लडा होने वाला था। जीजाजी कह रहे थे, "उसके पास बहुत पैसा है। उसी के बल पर कूद रहा है।"

सुरेश ने गम्भीरता से कहा, "मत समझो कि यह सारा खेल पैसे का ही है। यह खेल सावधानी और कर्तृत्व का है। साहेब इस बारे मे किसी से पीछे नही है।"

"इससे भी महत्त्व की बात यह है कि साहेब इस इलाके मे बहुत लोकप्रिय हैं। और अब बाई साहेब ने जो काम किये है, उससे तो सारे लोग अपने बन गये हैं। साहेब की जीत मे कोई सदेह नही है।"

मैं सब सुन रही थी। यह मनुष्य सीधा था। इसके भोले और अनभिज्ञ स्वभाव का फायदा उठाकर जिस व्यक्ति ने मेरा बलिदान करा दिया था, जिस व्यक्ति ने पैसे के लोभ मे मेरे मा-बाप को फसा दिया था, वही व्यक्ति साहेब से मीठा-मीठा बोल रहा था। वास्तव मे बदला तो उसी से लेना था।

मैंने जीजाजी की ओर देखा। सुरेश की ओर भी देखा। चुनाव की, घोषणा-पत्र की बातें चली। सब बता रहे थे कि मुझे क्या-क्या करना है।

मैं सब पर नाराज़ थी। मैं क्यों ऐसे मनुष्य का समर्थन करूं, जिसने मेरी ज़िन्दगी ही बर्बाद कर दी ?

दूसरे लोग चले गये। जीजाजी और सुरेश भी जाने के लिए निकले। मैंने उस समय क्रोध से थरथराते हुए कहा, "कहे देती हूं, मैं इस मामले में कुछ करने वाली नहीं हूं।"

मैं समझी थी कि जीजाजी मुझसे कुछ कहेंगे। मुझे कुछ शिक्षा देंगे। पर वे तो बहुत उस्ताद थे, महा धूर्त थे। आखिर साहेब के ही तो साथी थे। वह हंसे और बोले, "ठीक है, ठीक है। अभी तो बहुत देर है, देखेंगे।"

उन्होंने सुरेश से कहा, "चलो डॉक्टर, हमें नदी के उस पार छोड़ आओ। आज खाना बहुत खा लिया है।"

सुरेश आगे बढ़े। मैंने उनको रोककर कहा, "तुम यहीं रुक जाओ। मुझे तुमसे कुछ काम है।"

सुरेश क्षणभर के लिए विचलित दिखाई दिये, पर जल्दी ही संभलकर बोले, "ठीक है, जैसी आज्ञा। जीजाजी साहब, आप चलो। मैं तुकाराम से कहता हूं, वह छोड़ आयेगा।"

जीजाजी ने कुछ रोषपूर्वक मेरी ओर देखा और चले गये। हवेली में मैं, साहेब और सुरेश रहे। सुरेश ने मुझसे पूछा, "क्या बात है ? व्यर्थ में अविचार मत करो।"

"अनाचार की अपेक्षा अविचार अधिक अच्छा। मुझसे अब यह अनाचार सहन नहीं होता। मैं तुम्हारे सामने ही साहेब से साफ-साफ बात पूछने वाली हूं।"

सुरेश कुर्सी पर बैठ गये। उन्होंने इधर-उधर देखा। मैंने पूछा, "क्यों, किसको देखते हो ? अपने जागीरदार साहब को ?"

"नहीं, देखता हूं, आस-पास कोई नहीं है न।"

"हो, तो भी डरने का क्या कारण है। जो सत्य है, सामने आना ही चाहिए। मैं अपनी वंचना अब सहन नहीं कर सकती।"

"मुझे लगता है, आज तुम्हारा मन अस्वस्थ है। रात को विश्राम करो। सुबह फुरसत में बात करेंगे।"

"सुरेश, मुझे अब शांति या फुर्सत नहीं चाहिए। तुम मुझे आज से नहीं

जानते। तुम्हें पता है न कि मुझे गलत बात से कितनी चिढ़ है। उस दिन तुम्हारे मोह मे मैं भाग गयी। उसके कारण कितने महीनों से मैं जल रही थी। मेरी तीव्र इच्छा होती रही कि पति को सारी बात बताऊ, प्रायश्चित करू तथा क्षमा मागू। पर अब मैं जग चुकी हू। अब मैं तुम्हारे सामने ही उनसे बदला लूगी।"

सुरेश मेरे स्वरूप को आश्चर्य से देख रहे थे। वे उठे। मेरे कधे पर हाथ रखकर कहा, "तू मुझसे सच्चा प्रेम करती है न?"

"शका हो तो, आगे कुछ न बोलना ही अच्छा।"

'ऐसा नही है, सरल। मेरी बात ध्यान से सुन ले।"

'अब मैं किसी से कुछ सुनना नही चाहती।"

"तू मेरी बात सुनने के लिए भी तैयार नही है? तू मुझ पर प्रेम नही रखती है क्या?"

मैं थककर नीचे बैठ गयी। सुरेश ने हल्के हल्के मेरा कधा थपथपाया और बोले, "ये दो गोलियां ले और शाति के साथ सो जा। तेरे मन पर काफी तनाव है। हम लोग सुबह बात करेंगे।"

सुरेश ने मुझे बोलने नही दिया। वे नीद की गोलिया थी। मैंने खायी और साहेब के पलग पर लेट गयी।

मैं कितनी देर सोयी, पता नही चल रहा था। जब मैं जगी, तब साहेब झुककर मुझे देख रहे थे। उनकी स्नान पूजा समाप्त हो गयी थी। शरीर पर इस्त्री किये हुए स्वच्छ वस्त्र थे। सेंट की सुगध आ रही थी। सभी कुछ निर्मल था, सामान्य दम्पति के लिए दिन की सुन्दर शुरुआत थी। पति के इस भावात्मक रूप को देखकर कोई भी पत्नी ने सुख समाधान के आवेग मे भुजा फैलाकर…!

पर मेरा भाग्य ऐसा कहा था? साहेब को निकट देखकर मन मे सताप की लहर दौड गयी। मैंने मुह मोड लिया। साहेब ने मेरे बालो पर हाथ फिराया। चिन्ता के स्वरो में प्रेम-प्रीत का स्वर मिलाकर वे बोले, "जग गयी? रात-भर तुम बेसुध-सी थी। अभी धूप सिर पर आ जाने पर भी तुम्हारी नीद नही खुली, इसलिए मैं तो घबरा ही गया।"

मैं उनकी ओर नही देख रही थी। तो भी साहेब मीठे-मीठे शब्दो मे

कह रहे थे, "उठनी हो ना ? उठो। आज हमको चार-छह गांव घूमना है। मैं तुकाराम से जीप निकलवाता हू।"

मैं पहले जैसी होती, तो मुझे उन पर दया आ जाती। भावुक मन का यह व्यक्ति मेरी कितनी चिन्ता करता है, इसी कल्पना से मैं दब जाती। इच्छा न होते हुए भी मैं उठती और उनके कहे अनुसार सब कुछ करती।

पर आज तो मैं बदल चुकी थी। यह व्यक्ति धूर्त है, ढागी है। अपनी कमी छिपाने के लिए ही यह सारी उठा-पटक है। इसीलिए वह अपने सद्-व्यवहार और परोपकार के नीचे सबको झुकाना चाहता है। मैं इस व्यक्ति को दिखाना चाहती थी कि यह सारा ढोंग है और मैं पहचान चुकी हू।

साहब बार-बार मुझसे कह रहे थे, "उठो ना, तबीयत ठीक नहीं है क्या ?"

मेरे मन म एक फुलवार छूटी। मैं कडवी आवाज में बोली, "मेरे दिन चढ गये हैं।"

यह बोलते समय मेरे मन में असख्य सुइया चुभ रही थी। यह बात कितनी नाजुक थी। गर्भ रह जाने पर भी पत्नी इस बात को अस्पष्ट, अस्फुट और लजीले स्वर में बताती होगी। इस सूचना के अमृत मधुर-क्षण के कितने ही साहित्यिक वर्णन मैंने पढे थे। कालिदास की, शकुन्तला की भाव मुद्रा मेरे मन मे चित्रित थी।

आज वह सारी भावुकता मैंने निकाल फेंकी। मैं साफ झूठ बोली थी। मुझे साहब के चेहरे के भाव देखने थे। मैंने ढिठाईपूर्वक उन पर अपनी नजरें गडा दी।

मैं समझी थी कि मेरी बात सुनकर साहब को धक्का लगेगा। पर वे शान्त थे। स्थिर दृष्टि से वे मेरी ओर देख रहे थे। झूठ-सच की खोज कर रहे थे। उनसे नजर मिलाना मेरे लिए सभव नही रहा। मैंने हाथ चेहरे पर रख लिए। उगलियो की झिरियो के बीच से उनके चेहरे का भाव देखने का प्रयास कर रही थी।

साहब पास के पलग पर बैठ गये। उन्होने चेहरे पर से मेरे हाथ एक ओर कर दिये। मेरे ललाट के बाल पोछे किये और वहा अपने होठ टिका दिये। इसमे भावनोत्कटता नही थी। पत्नी के गर्भवती होने का कोई विशेष

आनन्द नहीं था। मेरे बालों को सहलाते हुए उन्होंने पूछा, "यह तुमको किसने बताया?"

मैंने झटके से उत्तर दिया, "यह बात बतानी पड़ती है?"

"कभी-कभी।"

'क्यों?" मैं एक-पर-एक प्रश्न कर रही थी।

"क्योंकि···क्योंकि, ऐसी···"

विगत दो-तीन वर्षों में मैंने पहली बार साहेब को अपनी बात कहते समय अटकते देखा था। मेरे मन का संताप उबल पड़ा। मैंने कड़वाहट के साथ पूछा, "आपको क्या कहना है?"

"सरला बाई!"

साहेब ने पहली बार मुझे नाम लेकर पुकारा था, पर उसमें प्रेम नहीं था, उत्कटता नहीं थी; गिड़गिड़ाहट थी।

मैंने उनकी ओर देखा। उनके चेहरे पर की सदैव की खिसियायी हँसी भी गायब हो गयी थी। वे पीले पड़ गये थे। उनकी इस दयनीय अवस्था को देखकर मुझे समाधान मिल रहा था। मैंने उनकी ओर दुर्लक्ष किया। अंगड़ाई लेती हुई उठी और बाहर जाने लगी।

मेरा हाथ पकड़कर साहेब ने मुझे रोक लिया। बोले, "थोड़ी देर यहीं बैठो, सरला बाई।"

"क्या है? पहले ही बहुत देर हो गयी है।"

"होने दो। हमारी बात सुन लो।"

'किसलिए? बाद में भी अपने पास बहुत समय है। आप कहीं दौरे पर तो नहीं जा रहे? या···"

मैं कहना चाहती थी, "या जीजाजी की तरह एक-आध दूसरा घर तो नहीं है।" पर ये शब्द मेरे मुंह में ही रह गए। इस व्यक्ति से इसका उत्तर सुनना भी तो मेरे स्त्रीत्व का अपमान था। मैं सुरेश से प्रेम करती थी, पर स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के बारे में मैं अज्ञान थी। विवाह होने तक सुरेश का एक-आध चुम्बन ही मेरी अन्तिम सीढ़ी थी। इस अज्ञान के कारण ही मैं विगत तीन वर्षों से इस व्यक्ति में रत थी। मैं समझती थी कि साहेब से प्रेम न होने के कारण ही मैं उनसे समरस नहीं हो पाती और मुझे समाधान

नहीं मिलता।

जीजाजी ने साहेब के बारे में उस दिन जो उद्‌गार प्रकट किये थे, उससे मुझे संताप हुआ था। उसके बाद से साहेब ने मुझसे आत्मामक धृति-पूर्ण व्यवहार प्रारम्भ किया था। इससे मुझे कष्ट होता था। मैं अस्वस्थ हो जाती थी। मेरा शरीर दुखता रहता था। पर मैं इसका सम्बन्ध सुरेश से जोड़ लेती। समझती थी कि उनके प्रति अपूर्व आसक्ति के कारण ही यह तड़प है। सुरेश ने एक बार ही मुझे जो पूर्ण सुख दिया था, उसका समाधान अलग ही था। बाद में भी मैं अपनी सारी बेचैनी को अपनी पूर्व दृष्टि से ही देखती रही।

यह सारा अज्ञान अब समाप्त हो गया था। मुझे चिढ़ हो रही थी। मुझे बदला लेना था। अब मैं अपना जीवन इस प्रकार नष्ट करने वाली नहीं थी। मुझे जीवन का उपभोग चाहिए था।

मैंने अपना वाक्य अधूरा छोड़ा था। साहेब मेरी ओर देख रहे थे। उनकी बिल्ली जैसी आंखों में मुझे धूर्तता और लाचारी दोनों एक साथ दिखाई दे रहे थे।

"सरला बाई, मेरी कुछ बात सुनोगी?"

"बोलो!" मैं विवश होकर पलंग पर लेट गयी।

"सरला बाई, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है। किसी अच्छे डाक्टर को दिखा लें। अच्छी तरह जाच करा लें।'

"क्यों? मुझे कुछ नहीं हो रहा।" मैंने अकड़कर उत्तर दिया।

"तुम्हारी यह यह दशा···तुमको नहीं लगता कि एक बार इसकी पूरी जांच करा लें।'

"जांच! क्यों? तुमने बम्बई में मुझे डॉक्टर को दिखाया था। मैंने व्यवस्थित रूप से उनकी दवा ली थी। उन्हीं का यह प्रभाव होगा। वास्तव में तो यह सुनकर आपको आनंद होना चाहिए था, नहीं क्या?"

"नहीं! नहीं, सरला बाई मेरी बात सुनो। मुझे माफ करो। मैं··· मेरे ही बच्चा होना संभव नहीं है।"

"आपको बच्चा नहीं हो सकता? किसने बताया?" उनकी तड़प देखकर मैं आनंदित हो रही थी। मैंने उसी चुभते स्वर में फिर से पूछा,

"यह आपको कब पता चला ?"

"बहुत पहले। इंग्लैंड में ही। वहा एक डॉक्टर ने मुझे बताया था।"

"और फिर तुमने विवाह किया ? मेरे मा-बाप की लाचारी का फायदा उठाया। अपने मित्र की मध्यस्थता में मेरे जैसी एक लडकी का बलिदान ले लिया। साहेब तुमको शर्म आनी चाहिए। तुम समझे होगे कि पैसे के ज़ोर पर सब कुछ चल जायेगा। पर ध्यान रखो, गत तीन वर्षों में मेरा स्वभाव तुम जान चुके होगे। मैं हार खाने वाली नही। दूसरी लडकियों की तरह रोती नही बैठूगी। मुझे बच्चा चाहिए। मा बनना प्रत्येक स्त्री का अधिकार है। मैं उसे नही छोडूगी। कुछ भी हो, अब मेरा निर्णय नही बदलेगा।"

इतना कहकर मैं पलग में उठी और सीधी बाहर चली गयी। मुझे आज बहुत हल्का-हल्का लग रहा था। नहाते समय मैं गा रही थी। खूब मस्ती के साथ नहायी।

इसी समय तुकाराम जीप लेकर आया। यह जीप मैंने ही खरीदवायी थी। बग्घी इन दिनो काम नही आती थी। घोडे थक चुके थे।

नाश्ता करके साहब बाहर निकल गये। हमेशा हम दोनो नाश्ता साथ ही करते थे। पर आज मैंने जान-बूझकर नही किया। मैं देखना चाहती थी कि साहेब मुझे आवाज़ देते हैं या नही। मेरा अनुमान ठीक निकला। साहेब अकेले ही नाश्ता करके बाहर निकल गये। जीप भी नही ले गये।

साहेब दोपहर में भोजन के लिए आये। सुरेश को साथ लाये थे। मैं उनके व्यवहार का अर्थ समझ नही पा रही थी। आज सुबह से ही घर अशान्त था। सुरेश मेरे लिए बहुत निकट थे। पर साहेब की दृष्टि से तो पराये ही थे। इस अशान्त स्थिति में वे सुरेश को क्यो लाये ?

घर की पुरानी प्रथा तोडकर मैं मेहमानों की उपस्थिति में भी सब के साथ टेबुल पर भोजन करने लगी थी। प्रारम्भ में कुछ विरोध हुआ, पर अब कोई कुछ नही कहता था। आवश्यक सुधार मैं स्वय ला रही थी। पर आज मेरा मूड ही दूसरा था। मैं साहेब की प्रत्येक बात का विरोध करना चाहती थी। सुरेश आये थे, तो भी मैं बाहर नही गयी। साहेब आये और मुझे देखकर चले गये। मैंने कत्थई रग की जार्जेट की साडी पहनी थी।

अलमारी खोली और आभूषण भी पहन लिये। स्वयं का रूप-सौन्दर्य दर्पण में देखकर प्रसन्न हो रही थी।

इसी समय साहेब सुरेश को लेकर कमरे में आये। सुरेश ने साहेब के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "बाई साहब आज बहुत खुश नजर आ रहे हैं।"

मैंने पीछे घूमकर देखा। पहले से ही कुरूप साहेब आज और भी अधिक कुरूप नजर आ रहे थे। मैं इसी विचार से सिहर उठी कि इस व्यक्ति के साथ मैंने तीन वर्ष का समय निकाला है। मैंने कुछ नाटकीय ढंग से कहा, "शायद साहेब ने अपने डॉक्टर मित्र को मेरी खुशी का कारण नहीं बताया है।'

साहेब का चेहरा और काला पड़ गया। खोखली आवाज में उन्होंने सुरेश से कहा, "डॉक्टर, इन्हें कोई गलतफहमी हुई होगी।"

"स्वयं के बारे में या तुम्हारे बारे में?" मैंने दो टूक प्रश्न किया। सुरेश भी चमककर मेरी ओर देखने लगे। साहेब की ओर दुर्लक्ष करते हुए मैंने सुरेश से कहा, "डॉक्टर, कोई स्त्री गर्भवती हो और उसका पति कहे यह असम्भव है, तो उसका अर्थ क्या?"

सुरेश संयम खोकर चिल्लाये, "सरल!"

साहेब ने एकदम सुरेश की ओर देखा। सुरेश लाल-लाल हो गये थे। उन्हें अपनी गलती का अहसास तो हो गया था, पर तीर छूट चुका था। मैं मन-ही-मन हंस रही थी। सुरेश ने साहेब का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "साहेब, मुझे क्षमा करो। मैं आपका अपमान नहीं करना चाहता था।"

साहेब ने सुरेश से हाथ छुड़ा लिया। वे सिर नीचा करके निकल गये। मैंने बचपन में दो कुत्तों की लड़ाई देखी थी। उनमें से एक दुम दबाकर भाग गया था। मैंने उसके पत्थर भी मारा था और खूब हंसी थी। इस समय साहेब को जाते देखकर मुझे हंसी ही आयी। अचानक ही मेरे गाल पर जोरदार चांटा पड़ा, सुरेश ने मारा था। मेरी आंखों के आगे अंधेरा छा गया और मैं नीचे गिर पड़ी।

सुरेश के इस व्यवहार से मुझे दुख नहीं हुआ। क्षण-भर में ही मैं स्वयं को संभालकर उठी और बाहर जा रहे साहेब को लक्ष्य करके बोली, "आपके

सामने डॉक्टर ने मुझ पर हाथ उठाया है। आप पर कोई असर नही है क्या ?"

साहेब क्षणभर के लिए विचलित हुए, फिर उसी खोखली आवाज में बोले, "मुझ पर असर का अब कोई महत्त्व ही नही रहा। इस घर, इस हवेली की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए जो कुछ मैं कर सकता था, मैंने किया। अब तो यही तय करना है कि अधिक विडम्बना होने से पूर्व क्या करूं। मैं तुम्हारे समान धैर्यवान नही हू।"

साहेब इतना कहकर जाने लगे, पर सुरेश ने दौड़कर उनको रोक लिया। कहा, "आप यहा बैठो, यह पगली अपने मन मे कोई कल्पना लेकर बैठी है। हम दानो ने तो ससार देखा है। प्रतिष्ठा हमारे शरीर पर वस्त्रों के समान है। वस्त्र फाड़कर फेंकने वाले व्यक्ति पर कालिख ही लगती है। हम तीनो को यही सोचना चाहिए।"

"मैं कहे देती हू कि मुझसे अब किसी भी प्रकार का ढोंग नही किया जायेगा, चाहे मेरा कुछ भी हो।'

"आज तेरा मन बहुत अस्थिर है। दो दिन आराम कर। उसके बाद ही हम तीनो आपस मे चर्चा करेंगे।"

मुझे सुरेश पर गुस्सा आया। मैं यही विचार कर रही थी कि इस व्यक्ति को मेरे जीवन से इस प्रकार खिलवाड़ करने दू या नही। साहेब तो बहुत व्यथित थे। उन्हे स्वप्न मे भी कल्पना नही हुई होगी कि उनके जीवन मे इस प्रकार की स्थिति आयेगी। जिन्होने जीवन-भर प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सब कुछ किया, आज वही प्रतिष्ठा धूल मे मिलने वाली थी। यह भी उस समय, जब उनके सामाजिक जीवन मे एक नया मोड़ आ रहा था। राजनीति मे उनका नाम हो रहा था। उन्हे विश्वास था कि वे मन्त्री भी बनेंगे। इसी समय उनके सामने यह भयानक उलझन आ गयी थी। वे टूट-से गये थे। सुरेश पर मुझे आश्चर्य हो रहा था। वे चौबीसा घंटे साहेब के साथ रहते। उन्हें धैर्य बधाते। उनके चुनाव-कार्य मे मदद करते। सुरेश ने मुझसे बात करना छोड़ दिया था। मैं अकेली थी—एकाकी थी।

७

मैं पूरी तरह बदल गयी थी। घर में रह कर भी घर में नहीं थी। साहेब और मेरी बातचीत नहीं के बराबर होती थी। मैं तो उनके अस्तित्व को भी महत्त्व नहीं देती थी। साहेब चुनाव के लिए बाहर-ही-बाहर घूमते रहते। दीदी भी चुनाव-कार्य के लिए बाहर जाती थी, पर मैं बहाना बनाकर घर में ही पड़ी रहती थी।

एक दिन अचानक राजू बहन घर आयी। इससे मेरे सामने एक उलझन पैदा हो गयी। इस सरल प्रेमी जीव को दुखी करना, उससे परायेपन का व्यवहार करना मुझसे नहीं जमता था। राजू बहन बहुत चतुर थी। वे सारी स्थिति बिना बताये समझ चुकी थी। उस समझदार स्त्री ने इस बारे में एक शब्द भी नहीं कहा। वह साहेब से भी बात करती। मेरे साथ भी रहती। प्रेम से सबकी देख-रेख करती रहती।

इस मनस्ताप का मेरे स्वास्थ्य पर भी असर पड़ा। मेरा खाना बहुत कम हो गया। अन्न तो क्या, मेरी जीवनेच्छा भी समाप्त-सी हो गयी। मेरी विद्रोही वृत्ति मुझे ही व्यथित कर रही थी। समझ नहीं पा रही थी कि आगे क्या करूं?

मेरा एक महत्त्वपूर्ण आधार भी मुझसे दूर हो गया था। सुरेश मुझसे बहुत कम बोलते थे। मैं जब भी उनसे बोलने का प्रयास करती, वे स्थिर दृष्टि से मेरी ओर देखते, जैसे मेरे दिल की अशान्ति की थाह ले रहे हों। फिर एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए कहते, "मुझे तुमसे बहुत बात करनी है। अभी सभी बातों पर विचार कर रहा हू।"

कैसी बात और कैसा विचार! वे अपने उपकारकर्ता का दिल दुखाना नहीं चाहते थे। इस सारे इलाके में मैं ही ऐसी थी, जिस पर साहेब का रोब नहीं था। सबको अपने उपकार के नीचे दबाने वाले उस व्यक्ति को मैंने झुका दिया था।

राजू बहन के आने से मेरे मन को कुछ शांति मिली थी। हमेशा विचारों के चक्रवात में घूमने वाला मेरा मन राजू बहन के बच्चों में रमने लगा था। एक दिन मैं उनके बच्चों में बैठी थी। उनसे प्यारी-प्यारी बातें

कर रही थी। उनमें से एक ने भोलेपन मे प्रश्न किया, "मामी साब, तुम्हारा लड़का नहीं है ? स्कूल भेजा है क्या ?"

क्षण-भर के लिए मैं विचलित हो गयी पर सभलकर धीमे से बोली, "मेरे बच्चा नही है रे राजा !"

"तुम्हारे बच्चा नही ! क्या तुम्हारी शादी नही हुई ? शादी होते ही बच्चा अपन आप आ जाता है। पूछो, हमारी मा साब से।"

राजू बहन बुनाई करती हुई निकट ही बैठी थी। बच्चे ने तुरन्त ही उनसे भी पूछा, "मा साब, शादी होते ही बच्चा आता है ना। मामी साब का बच्चा कहा है ? क्या उनकी शादी नही हुई ? शादी नही हुई, तो फिर वे हमारी मामी साब कैसे ?"

वह एक के बाद एक प्रश्न किए जा रहा था। राजू बहन पहले सुनती रही, फिर एकाएक उसको पकड़कर पीटने लगी। बालक रोने लगा। क्षणभर मैं भी समझ नही पायी थी कि मैं क्या करू ? पर शीघ्र ही आगे आयी और उसे छुड़ाकर बोली, "फालतू मे क्यो मार रही हो ?"

"फालतू मे ? जो मन मे आया, बक रहा है।"

"क्या गलत बोल रहा है ?"

"हा, तुम्हारी ऐसी कौन-सी उम्र हो गयी है, जिससे सब लोग इस प्रकार की बातें करें। सब बोलते हैं इसलिए तो बच्चे ऐसी बातें करते हैं।"

राजू बहन को आवेग हो आया। उन्होने मुझे छाती से लगाकर कहा, "मेरी भाभी कितनी अच्छी, लक्ष्मी जैसी है, पर भगवान की आखें न जाने कब खुलेंगी।"

मैंने राजू बहन से कहा, "राजू बहन, मेरे बच्चा नही होगा—कभी नही होगा।"

राजू बहन ने मेरे मुह पर हाथ रखते हुए कहा, "नहीं-नहीं, भाभी साब, ऐसा मत कहो।"

"पर राजू बहन, डॉक्टर ने ही यह बात कही है। तुम्हारे दादा साहेब के बच्चा नही हो सकता इसलिए।"

"उनके नही हो सकता होगा, पर तुम्हारा क्या ? डॉक्टर की बात पर ध्यान मत दो।"

दिनों की भूखी थी। मैं भी सुरेश के आह्वान का प्रति-आह्वान दे रही थी। सुरेश बीच-बीच में हम दोनों को ही वह मादक पेय पिला देते थे। इस पेय तथा सुरेश के आलिंगन के नशे में हम दोनों डूबते जा रहे थे। रात कब बीती, हममें न किसी को पता नहीं चला।

दूसरे दिन सही अर्थों में मेरी नींद खुल गयी। मेरे जीवन की सारी तड़प समाप्त हो गयी। मुझे नया मार्ग मिल गया। साहब अभी भी बेहोशी में थे। मैं उठी और व्यवस्थित होकर अस्पताल गयी—सुरेश से स्पष्ट बात-चीत करने के लिए।

मैं जानती थी कि जो रास्ता मैं अपनाने वाली थी, वह एक निराला रास्ता था। संसार की दृष्टि से वह पाप का रास्ता था। पर खूब विचार करने के बाद ही मैं इस निर्णय पर पहुंची थी। मैं जागीरदारी के रंग-रस-हीन सुख को छोड़कर नया मार्ग अपनाने जा रही थी। दुखों की चिन्ता नहीं थी।

मैंने कई बार सुना था कि पति को छोड़ना पाप है। मैंने यह भी कंठस्थ किया था कि पति-पत्नी का परमेश्वर है। पर अब यह मुझे मान्य नहीं था। जिस पति ने सारी जिन्दगी मुझे धोखा दिया, उसे धोखा देना मैं पाप नहीं मान रही थी। मेरा मन ही मेरा परमेश्वर बन चुका था।

मैं सुरेश के सामने खड़ी थी। वे मेरी ओर देखकर हंसे और बोले, "खुश।"

मैंने सिर हिलाकर कहा, "ऊं हूं।"

"क्यों ? अब क्या हुआ ?"

"अब ही तो सब कुछ होने वाला है। यह तो शुरुआत है।"

"तुम्हें कहना क्या है ?"

"यह तो नहीं कहा जा सकता कि जो कुछ हुआ वह साहब से अपरोक्ष हुआ, पर यह भी किसे पता कि उन्हें इसकी कितनी जानकारी थी। मैं तुमसे यही कहने आयी हूं कि उन्हें तुम स्वयं पूरी बात बताओ।"

सुरेश कांप-से गये। मैंने उन पर नजर गड़ाते हुए कहा, "मेरे स्वभाव में ढोंग और धूर्तपने की छाया तक नहीं है। साहब को हमारे पुराने सम्बन्धों

की कल्पना शायद न हो। तुम उन्हें बताओ और इसमें से योग्य रास्ता निकालो।"

"उन्हें स्वीकार नहीं हुआ तो ?"

"तो हम दोनों यह सब कुछ छोड़कर यहां से चल देंगे। अपना स्वतन्त्र संसार बसायेंगे। तुम्हारे साथ किसी भी क्षण यहां से निकलने के लिए मैं तैयार हूं।"

'छि-छि, ऐसा कुछ नहीं होगा। उस व्यक्ति के एक दोष अथवा एक दैवी विपत्ति के लिए इतना कठोर दण्ड देना अच्छा नहीं। उसकी मित्रता की प्रताड़ना मैं नहीं करूंगा। मैं एक डॉक्टर हूं, मानस-शास्त्र जानता हूं। यह आघात तुमसे सहन नहीं होगा।"

"फिर तुम्हारा मानस-शास्त्र मेरे लिए क्या कहता है ? क्या मैं इसी लाचार अवस्था में तुम्हारे दरवाजे पर पड़ी रहूं ?"

सुरेश ने एकदम मुझे पास खींच लिया। मेरे बालों पर अपने होंठ टिकाते हुए कहा, "नहीं सरल, मैं तुझे लाचार नहीं होने दूंगा। मुझे विचार करने दे। इस एक प्रश्न से तेरे, मेरे तथा साहेब-तीनों के जीवन का सम्बन्ध है।"

मैं उनकी बात समझ रही थी। अस्पताल शुरू करने में साहेब की मदद के लिए वे उनके ऋणी थे। मुझसे भी प्रेम और प्रीति के नाते से बंधे थे। जन-मानस में हम तीनों की प्रतिष्ठा थी। वे चाहते थे कि हमारी लोकप्रिय प्रतिमाओं पर दाग न लगे। इसके लिए वे नया मार्ग खोज रहे थे।

मैं वापस आयी। हवेली में घुसी, उस समय साहेब पूजा कर रहे थे। पिछले दिनों साहेब की पूजा के लिए तैयारी करने का अपना उत्तरदायित्व भी मैंने छोड़ दिया था।

घर में घुसते ही साहेब ने मुझे आवाज दी। अनेक दिनों बाद आज ही साहेब ने मुझे आवाज देकर बुलाया था। मन में आया कि कोई तीखा उत्तर दूं, पर सभी नौकर-चाकर आसपास थे, इसलिए चुप रही।

मैं पूजा-घर में घुसी। साहेब ने कहा, "यह दरवाजा बन्द कर दो, कड़ी लगा दो।"

साहेब के स्वर से मैं काप उठी। मुझे डर लगा। मैंने कई क्याएं पढ़ी थी, कई घटनाएं सुनी थी कि किसी जमीदार के लड़के ने गला दबा कर अपनी पत्नी का खून कर दिया, किसी ने अपनी पत्नी को गोली मार दी, किसी दम्पति ने विष खाकर आत्महत्या कर ली...मुझे यह क्षण भी इतना ही नाजुक लगा। साहेब पक्के शिकारी थे, निशानेबाज थे। दरवाजा बन्द करने मे मैं डर रही थी।

साहेब ने फिर कहा, "दरवाजा बन्द कर दो, मुझे तुमसे कुछ काम है।"

मैंने विवश होकर दरवाजा बन्द किया और कापती हुई उसी के सहारे खड़ी हो गयी। मैं मरना नही चाहती थी। मुझे अपने जीवन से प्रेम था। मैं डर के मारे काप रही थी, पर मेरा स्वाभिमान इस बात की इजाजत नही दे रहा था कि मैं साहेब के पाव पड़कर गिड़गिड़ाऊ, "मुझे मारो मत।"

साहेब बोले, "वहा ही क्यो खड़ी हो? इधर आओ, बैठो।"

साहेब ने बिछे हुए मृग-चरम की ओर इशारा किया। धड़धड़ाते हृदय से एक-एक पाव उठाती हुई मैं चुप्प मे जाकर बैठ गयी।

साहेब बहुत देर तक चुप बैठे रहे। यह चुप्पी मुझे भयकर लगी। मैं सोचती रही कि साहेब तय कर रहे हैं—मुझे कैसे मारा जाये। मैं बार-बार देवमूर्ति की ओर देख रही थी। पर प्रार्थना नही कर रही थी। मेरी प्रवृत्ति ही नही थी कि किसी की शरण जाऊ। साहेब सामने बैठे थे। उनकी आखों मे एक अजीब चमक थी—मुझे कपा देने वाली।

८

आज सारी हवेली हर्षोत्साह से भरी हुई थी। साहेब खुशी में झूमते हुए स्वय सारी व्यवस्था देख रहे थे। मैं अन्दर के कमरे मे शिशु को लेकर बैठी थी। बालक खूब गौरवर्ण था। राजु-ननद ने बड़ा मन लगाकर उसका शृगार किया था। शरीर पर रेशमी मखला था, सिर पर जरीदार

टोपी, हाथ-पाव-गले में सोने के आभूषण। मैं बाल को निहार रही थी—समाधानपूर्वक। मुझे जो कुछ चाहिए था, वह मिल गया। पर उसका मूल्य भी बहुत बडा चुकाना पडा था। मैंने बचपन से सजोये अपने सिद्धान्तो को होम दिया था। मैं सारे ढोंग करने के लिए तैयार हो गयी थी।

नामकरण-सस्कार की सारी तैयारिया हो गयी थी। डाक्टरनी बाई के आने की ही देर थी। उन्होने ही प्रसूती करायी थी। साहेब की हलचल जारी थी। अब तो वे राज्य सरकार मे उपमत्री थे। उनका मान सम्मान बढा था और अब पूरे छह वर्ष पश्चात् हुए इस पुत्र के कारण तो सोने मे सुहागा मिल गया था। मुख्यमत्री ने भी बधाई का तार भेजा था। चारो ओर आनन्द-ही-आनन्द था। पर मैं? मैं तो अन्दर-ही अन्दर घुट रही थी। साहेब के आनन्दित चेहरे की ओर देखने की भी इच्छा नही हो रही थी। दुनिया की दृष्टि से सारा सुख पावो मे पडा था, पर उस सुख से मुझे चुभन थी, वेदना थी।

सुरेश ने मुझे कितनी ही बार समझाया था कि इस तरह व्यथित न रहू। सुखो का उपभोग करू। मैं सुरेश से कहती, 'तुम्हारा यह सहवास ही मेरा सर्वोत्तम सुख है। इस समय यहा से दूर किसी निर्जन अरण्य मे तुम्हारे साथ होती, तो मुझे पूर्णत्व प्राप्त होता। यहा तो कुछ अधूरा सा लग रहा है।"

"इस ससार मे पूर्णत्व तक कोई नही पहुचा। सरल! तुझे जो सुख मिल रहा है उसी म समाधान खोज। तू कुछ भी समझ, पर मैं तो साहेब का ऋणी हू। हलाहल को भी पचाना उनकी ही शक्ति है।'

मुझे सुरेश की बात पर हसी आयी। कहा तो विश्व-कल्याण के लिए हलाहल को पचाने वाले नीलकठ और कहा यह जागीरदार साहेब! स्वय की झूठी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए ढोग और नाटक मे लिप्त!

मैं सब समझ रही थी, व्याकुल थी, तो भी इस नाटक मे सक्रिय भाग ले रही थी। दूसरा रास्ता भी तो नही था। छूटना चाहती, तो अवसर यही था। सुरेश ने मुझे रोक लिया था। अपने मदमस्त आलिंगन मे उसने मुझे प्रीति के साथ यह कडवी गोली भी तो खिला दी थी—नाटक खेलने की।

सारे शोरगुल के बीच मैं अकेली थी। न जाने कौन-कौन आ रहा था। बच्चे का लाड-दुलार करते कहते, "मातृमुखी है ? मातृमुखी सदासुखी।"

यह सुनना मुझे अच्छा लगता। मेरा बच्चा मुझ पर गया था। बीजारोपण के बाद से ही मेरा मन एक भय से व्याकुल था—यह कैसा होगा ? किसका रूप लेगा ? मेरा या सुरेश का ? सुरेश पर गया, तो कैसा झंझावात खड़ा होगा ?

उस दिन पूजा-घर में मैं साहेब के सामने बैठी थी—सहमी हुई-सी। साहेब बहुत देर तक चुप रहे, फिर उन्होंने मुझसे पूछा, "तुमने महाभारत पढ़ा है न ?"

"हां।" इससे अधिक बोलने में डर लग रहा था। महाभारत के ऐसे कितने ही प्रसंगों का मुझे स्मरण था।

"कुंती की कथा याद है ?"

"कौन-सी ? कर्ण की ?" मेरा डर कम नहीं हुआ था।

"कर्ण की नहीं, पांडवों की।"

सारा महाभारत ही तो पांडवों की कथा थी। मैं क्या उत्तर देती ?

"पांडवों की जन्म-कथा एक बार फिर से पढ़ो—खास करके कुंती के प्रसंग।"

"क्यों ?"

"मुझे लगता है अपने जीवन में भी ऐसा ही महाभारत हो रहा है। मैंने उस पर विचार किया है।"

साहेब शान्ति के साथ बोल रहे थे। मैं चुप बैठी थी।

साहेब ने पूछा, "तुम्हारा यह विवाह मन के विरुद्ध हुआ है न ? मैं भगवान पर विश्वास रखने वाला व्यक्ति हूं। इसी श्रद्धा के कारण अपने कष्ट पचा पाता हूं।"

मैं फिर भी गुमसुम रही। मैं कुछ सुनना भी नहीं चाहती थी इस दंभी व्यक्ति से। मेरे कपाल पर बल पड़ गये। साहेब ने देखा भी होगा। स्थिर दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए उन्होंने कहा, "मुझे आज तुमसे बहुत कुछ कहना है। वह सुनो—उस पर विचार करो। बाद में फुरसत में उस पर निर्णय दो। चुनाव की धूम समाप्त होने के बाद दो—पर दो अवश्य।"

"किस बात का ?"

"वही बता रहा हू । मैं इतना दुष्ट नही हू जितना दिखायी देता हू । मैं अच्छा पहलवान था । आज भी हू । तुम जानती ही हो । मेरी यह कमी कभी किसी के ध्यान मे नही आती । मैकमिलन साहब मुझ पर बहुत प्रेम रखते थे । मा का तो मैं लाडला था ही । तुम्हारे जीजाजी और मैं बराबर उम्र थे । वे यहा आते रहते थे । मैकमिलन साहब को उनका व्यवहार पसन्द नही था । नौकरानियो से उनका लगाव और छेडछाड किसी को अच्छा नही लगता था, मुझे भी नही । मैं इसे दुश्चरित्रता का लक्षण समझता था ।

"बाद मे विदेश गया । सुन्दर नही था तो भी ऐश्वर्य-सम्पन्न तो था ही । वहा की स्त्रियो के लिए तो मेरा धन ही सबसे बडा आकर्षण था । कितनी ही लडकियो ने मुझसे सम्पर्क बढाने के प्रयास किये । यो मैं लडकियो से खुले दिल से बात करता था, किन्तु सहवास का अवसर आते ही ढीला पड जाता था ।"

साहब बोल रहे थे, खुले दिल से । उन्होने विदेश में अपने मोहक्षणो और अपनी दुविधापूर्ण मन स्थिति को मेरे सामने खोल कर रख दिया । मैं अनजाने ही भावुक हो गयी । साहब अपनी कहानी कहने मे मग्न थे ।

साहब ने कहा, "मैंने एक अच्छे डॉक्टर से सलाह ली । उन्होने मुझे दवा दी तथा एक छोटा सा आपरेशन भी किया । इससे मेरा पुरुषत्व जागृत हो गया, किन्तु प्रजनन-शक्ति नही रही । काम क्रिया मे मैं कैसा हू, तुम जानती ही हो ।"

मैंने सिर झुका लिया । प्रारम्भिक दिनो के कई प्रसग याद आये । मैं सन्तुष्ट भी उनकी इसी बात पर थी ।

"तुम्हारी दीदी के विवाह मे तुम्हे देखा । तुम मुझे पसन्द आयी । मैंने अपनी सारी स्थिति तुम्हारे जीजाजी को साफ-साफ बता दी थी । उन्होने बात चलायी । तुम्हारी ढिठाई, तुम्हारे तीखे बोल आदि से मुझे लगा था कि तुम मेरी वासना का आह्वान करोगी तथा कौन जाने कोई चमत्कार हो जाये और मैं पूर्ण बन जाऊ । पर ऐसा नही हुआ । तुम्हारा मन ही नहा लगा और अब इसका कारण भी समझा । डॉक्टर यहा क्यो आये, यहा क्यो रहे—यह स्पष्ट हो गया ।"

"नही, ऐसा नही है।" काफी देर बाद मैंने मुह खोला था।

"शायद न हो। शायद वे सहज रूप मे आ गए हो और बाद मे तुम्हे देखकर यहा रह गये हो। अब उसका कोई महत्त्व नही रहा है। मैं इस सारी बात को दूसरे दृष्टिकोण से देखता हू।"

"मैं आपका मतलब नही समझी।"

"बताता हू। इसीलिए तो तुम्हे महाभारत की याद दिलायी है। अब मैं पहले अपनी भूमिका बनाता हू। मैं एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हू। समाज मे मेरी प्रतिष्ठा है, मेरी मान्यता है। उस दिन सब कुछ देखा, इच्छा हुई—बदूक उठाऊ और स्वय को गोली मार लू। पर विवेक पुन जागृत हो उठा। मेरे मरने से मेरी प्रतिष्ठा बचने वाली नही थी। मुझे मा साहेब की याद आयी। मैंने स्वय को सम्हाला। तुम पर नाराज नही हुआ। आज भी मेरे मन मे तुम्हारे प्रति कोई राग-द्वेष नही है। यह भावना अवश्य जाग उठी है कि मैं अपराधी हू। मैं इसका प्रायश्चित करूगा।"

मैंने चमककर साहेब की ओर देखा। समझ नही पा रही थी कि वे किस प्रकार के प्रायश्चित्त की बात कर रहे थे।

वे हसे। मैंने पूछा, "आप अपनी बात साफ कहेंगे, तो अच्छा होगा।"

"यही करूगा। इसीलिए तो इतनी लम्बी भूमिका बाधी है। मैं तुम्हारे सामने कुती का स्वरूप रख रहा हू। मुझे अपनी प्रतिष्ठा, अपना खानदान, अपना नाम—सभी कुछ अतिशय मूल्यवान लगते हैं। उनके रक्षण के लिए मैं कुछ भी कीमत देने को तैयार हू। यदि इस समय कोई मुझसे पूछे कि तुम्हे सबसे अधिक क्या चीज प्यारी है तो मैं उत्तर दूगा – सरलाबाई! मैं समझता हू तुम विश्वास नही करोगी। यो भी तुम्हे मेरी किसी बात पर विश्वास नही रहा है। पर इस समय मन का सारा मैल दूर कर मेरी बात पर विचार करो।

"कुन्ती ने पाडु के लिए जो किया, वह करने की प्रार्थना तुमसे मैं कर रहा हू। तुम मेरे लिए ही बच्चे को जन्म दो।"

मैं साहब की ओर देखती रह गयी। मुझमे कुछ भी बोलने का होश नही रहा था। शायद मैं यह भी समझ नही पा रही थी कि साहेब क्या कह रहे हैं।

"तुम्हारे ध्यान में नहीं आया है। आजकल कई स्थानों पर टयूब-बेबी का प्रयोग होता है। अपनी गौशाला में गाय की नस्ल सुधार के लिए हमने क्या किया, यह भी तुम्हें पता है। पर मैं ऐसे प्रयोग नहीं करूंगा। मुझे तुम्हारा सुख भी देखना है।"

मुझे हंसी आयी। मैं कडवाहट के साथ हंसी। बोली, "मुझे आप पर आश्चर्य हो रहा है। आप मेरा सुख किस प्रकार देखेंगे! अब मेरे सुख का कोई अर्थ भी रहा है क्या?"

"तुम्हें आज ऐसा लग रहा है, पर मैं समझता हूं बाद में यह बात नहीं रहेगी। डॉक्टर के बारे में अधिक बात करना ठीक नहीं। वह अलग विषय है। मैं तो अपनी बात कहता हूं कि डॉक्टर और तुम्हारे सम्बन्धों के फलस्वरूप उत्पन्न बालक को मैं अपना कहूंगा। तुम मुझे केवल एक भीख दो—मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा का वचन।"

साहेब इतना कहकर, दरवाजा खोलकर चले गये। मैं वहीं बैठी रही।

साहेब की बातें मुझे बार-बार याद आती थीं। मैं उनका मतलब समझ गयी थी। पर यह कैसे सम्भव था? क्या ऐसा मुखौटा चढ़ाकर मैं जिन्दा रह सकूंगी?...

मैं कितनी ही देर तक इन विचारों में बैठी रही। हृदय में सारी वेदनाएं इकट्ठी हो गयी थीं और एक बादल सा उठ रहा था। चारों ओर घोर अंधेरा फैल रहा था। मैं अकेली चली जा रही थी—कहां? क्यों? पता नहीं चल रहा था।

न जाने कब तक मैं भ्रमित-सी बैठी रही। इसी बीच तुकाराम ने आकर मुझे बाहर किसी के आने की सूचना दी। चुनाव की हलचलों के कारण मेरे पास भी खूब काम बढ़ गया था। मैं बाहर आयी। अखबारों में मेरा फोटो देखकर मेरा पता लगाते हुए मेरी एक पुरानी सखी मुझसे मिलने आयी थी। मैंने उसका स्वागत किया।

मन पर भयंकर भार होने हुए भी मैंने नाटक में अपनी भूमिका प्रारम्भ-सी कर दी। मैं उससे बातें कर रही थी। उसको अपनी हवेली दिखा रही थी, उत्साह का अभिनय करते हुए। साहेब से उसका परिचय कराते समय भी मैंने अपना यही मुखौटा बनाये रखा।

हम सबने भोजन भी साथ ही किया। साहेब उससे बातें कर रहे थे। उसकी पूछताछ कर रहे थे। उससे रुकने का आग्रह कर रहे थे। वे ही क्या, हम दोनों ही यह दिखाने का नाटक कर रहे थे कि हमारा ससार कितना सुखी है, कितना सुखी है। झूठ-मूठ हस रहे थे, एक-दूसरे का मजाक कर रहे थे, चुनाव के मजेदार किस्से सुना रहे थे।

मेरा पागलपन ही तो है, मैंने साहेब के लाये हुए अपने सारे गहने और कपडे उसे दिखाये। वह बोली, "सरला, तू कितनी भाग्यशाली है! तेरे जागीरदार कितने अच्छे है। तेरे ससार म बस एक ही तो कमी है।"

मैं उसकी बात का अर्थ समझ गयी, बोली, "उसका इलाज चल रहा है। मैं दवा ले रही हू।"

"अच्छा! तब तो अगली बार मिठाई का डिब्बा लेकर आऊगी। भगवान म प्रार्थना है कि तेरी दवा गुणकारी हो।"

वह गयी और मैं निढाल होकर पड गयी। इस नाटक से मैं बहुत थक गयी थी। कुछ ही घटो मे यह हाल हो गया, तो यह नाटक जीवन-भर कैसे चलेगा? पर यह विचार ही क्यो? क्या मैं नाटक करगी ही? क्या मेरा मन इसके लिए तैयार हो गया है? पर क्यो? सुरेश के कारण, इन सुखो के कारण या मातृत्व की भूख के कारण अथवा क्या साहेब की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए? प्रतिष्ठा का, यह आवरण छोड दिया, तो क्या होगा?

एक के बाद एक प्रश्न पर उत्तर किसी का नही। कितने ही दिन, कितने ही महीने मैं बेचैन रही, सभ्रमित रही। चुनाव पूरे हुए। साहेब यशस्वी हुए। वे बहुत खुश थे। एक बहुत बडी पार्टी हुई। सुरेश ने इस पार्टी में एक लम्बी कहानी कही—एक राजा की सत्यकथा—मुझसे मिलती-जुलती। मैं ध्यान स सुन रही थी। साहेब मेरे पास बैठे थे, अपने हाथ मे मेरा हाथ लेकर।

दिन बीत रहे थे। हमारी हवेली शान्त थी। मैं साहेब के चारो ओर घूमती रहती थी—पहले से कही ज्यादा। यह भी एक नाटक ही था। एक बार जीजाजी ने मेरे सामने ही साहेब से पूछा, "क्यो साहेब, अब तो सारा रग ही बदल गया। सरला बहन बहुत खुश है।"

मैंने अपना होठ दातो तले चबा डाला। जीजाजी व्यग्य मे ही तो बोल

रहे थे। मैंने साहेब की ओर देखा, वे शांत बैठे थे।

जीजाजी ने दीदी से भी कुछ कहा होगा। दीदी ने मुझसे पूछा था, "क्या साहेब आजकल कोई दवा ले रहे हैं? किसकी?"

"डॉक्टर से ही। इसीलिए तो उन्होंने डॉक्टर को पास रखा है।"

मेरा उत्तर मेरी भूमिका के अनुरूप ही था। साहेब हर तरह से मेरा साथ दे रहे थे। मेरे लिए सभी ओर प्रेम, स्नेह और उमड़ा पड़ रहा था।

इसी वातावरण में प्रसूती हुई। राजू ननद मेरे दिन चढ़ने की बात सुनकर ही दौड़कर आ गयी थी। बच्चा होते ही सारी हवेली आमोद-प्रमोद, उत्साह और हर्ष से गूंज उठी। साहेब तो हमारी ओर इतनी प्रशंसा, प्रेम और स्नेह से देखते थे, मानो वह बच्चा उन्हीं का हो। उनकी इस वृत्ति पर मुझे आश्चर्य भी होता, गुस्सा भी आता। क्या इस व्यक्ति का कोई अहं नहीं है? क्या इस व्यक्ति का कोई मन नहीं है?

पर मेरा यह भी तो अनुभव था कि साहेब के पास बहुत भावुक और प्रेमी मन है। उनके पास से कभी कोई निराश नहीं गया। किसी की भी विपत्ति में सहायता के लिए वे सदैव दौड़ पड़ते थे। सभी लोग उनसे प्रेम करते थे। पर इस व्यक्ति में ऐसा क्या था जिससे इसे महसूस ही नहीं हो रहा था कि उसकी पत्नी अपने प्रेमी से गर्भवती हुई थी!

एक बार मैंने सुरेश से इस विषय पर चर्चा भी की। उन्होंने कहा था, "तू समझ नहीं सकेगी कि पुरुष का सर्वाधिक प्रेम अपनी प्रतिष्ठा से ही रहता है।"

"तुम्हारा भी? मेरी अपेक्षा तुम अपनी प्रतिष्ठा को ही अधिक महत्त्व देते हो?"

"नाराज़ न हो तो सही बताऊं। वास्तव में मैं अपनी प्रतिष्ठा की ही रक्षा कर रहा हूं अन्यथा तेरे साथ कभी का यहां से भाग जाता।"

"बहुत अच्छा होता। मैं इस विडम्बना से बचती।"

सुरेश हंसे। मैंने गुस्से में कहा, "तुम्हें हंसी आ रही है। मेरी तो सारे जीवन की हंसी उड़ रही है।"

"गुस्सा आ रहा है क्या? मेरी बात मान दुःखी मत हो। ऐसे समय में तो आनन्दमग्न रहना चाहिए। जागीरदार का उत्तराधिकारी तो अच्छा,

स्वस्थ एवं सुदृढ होना चाहिए।"

"सुरेश!" सताप से भरकर मैं चिल्लायी, "औरो के बारे मे तो मैं कुछ नही कहती, पर तुम भी इस प्रकार बोलो, यह मुझे सहन नही होता।"

"सुनने की, सहन करने की आदत डालना चाहिए। यह धारणा बनाना चाहिए कि बच्चा उन्ही का है। तेरे, मेरे और साहेब के लिए यही हितकर है। तू मन को सयमित कर।"

"अर्थात् मैं अपने मन को मार दू। स्वय को भी धोखा दू और ससार को भी।"

मेरे मन मे भयकर वेदना थी। पर इस वेदना, इस विडम्बना का ज्ञान किसे? ससार अधेरे मे था। उससे भी अधिक अधेरे मे मैं थी। साहेब की ओर देखने से भी मुझे घृणा होने लगी थी। पर मैं ज्यो-ज्यो उनसे दूर जा रही थी, त्यो-त्यो वे पास आ रहे थे। मेरी चिन्ता करते थे। मुझे फूल जैसा रखते थे।

मुझे तो सुरेश चाहिए थे। वे मुझे मिले भी, पर इससे मुझे सन्तोष नही था।

सुरेश ने एक दिन अचानक कहा, "सरल, मैंने विवाह करने का तय किया है।"

"क्या?" वास्तव मे यह धक्का तो बहुत बडा था।

"हा। तू सोच, मुझे अब साथी की बहुत जरूरत लगती है। मैंने साहेब से सलाह भी ले ली है।"

"साहेब! साहेब! साहेब! उन्ही का विचार, उन्ही से सलाह! मैं कुछ भी नही हू क्या?"

"है, मेरी सरल है।"

"फिर? तो भी विवाह का विचार।"

"हा। यह भी प्रतिष्ठा के लिए। तुझे-मुझे लेकर दुनिया का मुह बन्द करने हेतु एक और आवरण।"

"अर्थात् एक और धोखा, एक और ढोग!"

सुरेश चुप हो गये। मैं समझी, बात समाप्त हो गयी। पर सुरेश पत्नी ले ही आये—डॉक्टर पत्नी। मैंने दम्पति के स्वागत का सारा नाटक किया।

और अभी हम डॉक्टरनी बाई की राह देख रहे थे। उनके आते ही नामकरण-संस्कार होने वाला था। मैं सब कुछ देख रही थी। राजू बहन पास खड़ी थी—मेरी ओर देखती हुई आनन्द और तृप्ति से।

९

गत दस वर्षों में मैंने क्या पाया था? मान-सम्मान? इस मान सम्मान का चाव मुझे नहीं था। उस समय मन लगाने के लिए मैंने स्कूल खोला था। अब तो हमारे इलाके के प्रत्येक गाव में मेरे नाम पर एक अच्छा स्कूल और एक उद्योग मन्दिर चल रहा था। साहेब और मैं! सभी लोग हमें एक आदर्श दम्पति मानते थे। और इन सारी बातों से मुझे उबकाई आती थी।

साहेब की मनोवृत्ति पर मुझे रह-रहकर आश्चर्य होता था। इतने बड़े 'महाभारत' के बाद भी वे मुझे चाहते थे। अपनी खिसियानी हंसी मुझ पर लादते रहते थे। मैं चिढ़ती थी, दुखी होती थी।

मेरा विवेक—मेरा मनीष! दोनों की बाल-लीलाओं में मैं खो-सी जाती थी। उनका कौतुक करती थी। वे सभी के लाडले थे। सभी उनको प्यार करते थे, उनकी प्रशंसा करते थे। मैं प्रसन्न होकर देखती थी, पर उस समय चिढ़ उठती थी, जब साहेब उन्हें अपना कहते थे। मैं सोचती थी कि इनको अपना कहने का अधिकार साहेब को नहीं है। पर होता उलटा ही था। बच्चों को भी पापा साहेब की ही रट रहती थी और साहेब तो बच्चों पर जान न्यौछावर करते थे।

मेरी इच्छा होती थी कि सुरेश इन बच्चों की ओर ध्यान दें, उनके लिए अधीर हों, उनके साथ खेलें, उनके साथ घूमें। पर सुरेश तो अपने कामकाज में व्यस्त थे। अपनी गृहस्थी में मग्न थे। मेरी गृहस्थी की विडंबना होते हुए वे अपनी गृहस्थी में रम जाए, यह मुझसे सहन नहीं हो रहा था। मैंने शिकायत की, तो सुरेश बोले, "अरे, यह तो एक नाटक है।"

बच्चे बड़े हुए। मैंने उन्हें दूर भेज देने का निर्णय लिया। मैं जानती थी कि साहेब को मेरा निर्णय स्वीकार नहीं होगा, पर मैं तो अपने बच्चों को

साहेब से दूर रखना चाहती थी। बच्चे सुरेश के नहीं थे, साहेब के नहीं थे, केवल मेरे थे। मैं उन्हें इस ढोंगी और नाटकीय ससार की हवा मे पालना नहीं चाहती थी। इसीलिए मैंने यह निर्णय लिया था।

मेरा निर्णय सुनकर साहेब का चेहरा उतर गया। बोले, "पर क्यो ? तुम्हारा स्वय का इतना अच्छा स्कूल है। स्वय ध्यान दे सकोगी।"

मैंने प्रेमल मुखौटा चढाकर उत्तर दिया, "आप शिक्षा के लिए विदेश गये। कितना अच्छा पढे। आपके बच्चो को भी उत्तम शिक्षा मिलनी चाहिए। बच्चे दूर रहने से अधिक होशियार बनते हैं, उनमे आत्म विश्वास बढता है। क्या आप नही मानते ?"

मेरी बात साहब के गले उतर गयी। यों भी वे मेरी बात मानते ही। मुझसे वे दबकर ही तो रहते थे।

प्रश्न तो सुरेश का था। सासारिक दृष्टि से वे हमारे कुटुंब के हित-चिंतक थे, पर मेरे लिए तो उनका स्थान अलग ही था। कभी कभी डॉक्टरनी बाई कहती, "बाई साहेब, आप इनकी कितनी चिन्ता करती हैं। आपका और साहेब का हम लोगो पर कितना स्नेह है।'

बेचारी ! मुझे उस पर दया आती थी। हम सब उसे कितना धोखा दे रहे थे। कभी-कभी वह मुह लटकाकर कहती, "बाई साहब, मैं इनके विरुद्ध आपके पास शिकायत करना चाहती हू।"

"किस बात की ?"

"बाई साहेब, मैं इनकी कोई भी बात कर रही होऊ और आपकी आवाज भी सुन लें, तो सब कुछ छोडकर आपके स्वागत के लिए बाहर दौड पडते हैं।"

उसके इन शब्दो से मैं मन-ही-मन सुखी हो जाती थी। मुझे समाधान होता था कि सुरेश मेरे है।

बच्चों को दूर रखने का अन्तिम निर्णय हो गया और हम सब इसकी तैयारी में लग गये। राजू बहन बच्चो से मिलने के लिए तुरत आयी। मुझसे बोली, "भाभी साब, मेरी समझ मे नही आता, तुम और दादा साब क्या करते हो ? सोने जैसे बच्चे ! उन्हे दूर क्यो भेज रहे हो ? तुम्हे चैन कैसे पडेगी ?"

'राजू बहन, चैन तो कहा आयेगी ? पर देखो न, पढने के लिए तुम्हारे दादा साहेब भी तो इतनी दूर गये थे, फिर उनके बच्चे क्यो न जायें ? लोग क्या कहगे ?"

राजू बहन को भी बात जच गयी। बच्चो को भेजने की बात तय होते ही साहेब तो व्यग्र थे ही, मुझे भी कुछ होश नही रहा था। एक आख मे हसी और एक आख मे आसू लेकर मैं काम मे जुट गयी थी।

चाहती थी कि बच्चो को पहुचाने सुरेश जाए, पर सुरेश तो उन्ह विदा करने भी समय पर नही आये थे। साहेब 'अपने' बच्चो के उज्ज्वल भविष्य की कल्पनाए चित्रित कर रहे थे। उनकी बातें सुनकर मुझे उनकी मूर्खता पर दया आ रही थी।

सुरेश आये। मैंने अपनी नाराजगी प्रकट की। पर सुरेश तो धूर्त थे। साहेब का हाथ पकडकर चाय के लिए चल दिये। पीछे-पीछे मुझे भी जाना ही पडा।

चाय की मेज पर हम तीनो बैठे थे। बच्चो की चक चक नही थी। सब-कुछ शात था, नीरव था। बच्चो की खाली कुर्सिया देखकर मेरी आखो मे आसू आ गये। मैं व्याकुल हो उठी और मेज पर सिर टिकाकर सिसकिया भरने लगी। एक साथ ही दो हाथ मेरे सिर पर आ गये, पहले साहेब का और ऊपर सुरेश का।

भर्राये स्वर मे मैं बोली, "मुझे बच्चा को दूर नही भेजना था, पर यहा के वातावरण मे उनको पालना मेरे लिए असह्य था। मुझे बहुत वेदना होती थी।"

"और मुझे भी! साहेब, अब आपके सामने कहता हू—बच्चों को विदा करने मैं जान-बूझकर नही आया। मेरी इच्छा थी कि एक बार उन्हे छाती से लगा लू।"

"फिर बाधा कौन-सी थी ?" मैंने गर्दन उठाकर कहा।

"बाई साहब! बाधा थी। तुम भूल रही हो।"

मैंने सुरेश की ओर देखा। उनकी नीली आखें मुझमे कुछ ढूढ रही थी।

तुरत ही साहेब की ओर देखकर उन्होंने कहा, "बाई साहब, तुम्हें

मानना चाहिए कि साहेब ने हमेशा ही तुम्हारे सुख का विचार किया। उनका त्याग बड़ा है। उनका ऋण भुलाने से काम नहीं चलेगा।"

"डॉक्टर! इनके ऊपर मेरा कोई ऋण नहीं है। वास्तव में मैं इनका ऋणी हूं। पुरुष चाहता है कि उसका नाम आगे चले। दुर्भाग्य से मुझमें कमी थी। ये मेरे पास रहीं। मुझे पुत्र-जन्म का आनन्द दिया। आज मेरी सारी प्रतिष्ठा इन्हीं की देन है। डॉक्टर! मैं इनका बहुत ऋणी हूं।"

मैं सुन रही थी। समझ नहीं पा रही थी कि कौन किसका ऋणी है—मैं साहेब की या साहेब मेरे? अथवा सुरेश हमारे? मैंने उठते-उठते कहा, "ऋणों की यह भाषा मैं नहीं समझती। केवल इतना जानती हूं कि मैं मां हूं। मैंने अपने बच्चों को दूर भेज दिया है, पर समझ नहीं पा रही कि क्यों? मुझे कल्पना होती कि जीवन की ऐसी विडम्बना होगी, तो..."

"तो भी तुम कुछ कर नहीं पाती! जीवन ऐसा ही होता है। मनुष्य अपने चारों ओर एक घेरे का निर्माण करता है। अपना सारा संसार इस घेरे में केन्द्रित कर लेता है। उससे बाहर निकलने में उसे डर लगता है। इस घेरे से निकलने का कोई उपाय मुझे अभी तक दिखायी नहीं दिया है सरलाबाई! जब भी मुझे राह मिलेगी, तुम्हें उसी क्षण मुक्त कर दूंगा।"

साहेब बोल रहे थे। मैं सुन रही थी। महसूस कर रही थी कि इस घेरे को तोड़ने की आशा, इच्छा और शक्ति मुझमें नि:शेष हो चुकी थी।

मैंने साहेब का हाथ पकड़ा और कहा, "आप ऐसी बात मत करो। मुक्त होने की अब मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं अपने सुख की आशा भी छोड़ चुकी हूं। सुरेश के सहवास में भी मुझे कोई उत्फुल्लता महसूस नहीं होती। अब तो मेरा मन लगता है तो मेरे बच्चों में, आपके पट्ठों में।"

सुरेश मेरी ओर देख रहे थे। मैंने हंसकर उनसे कहा, "सुरेश, तुम जाओ! स्वयं मुक्त होने के स्थान पर मैंने आज से तुमको ही मुक्त किया।"

सुरेश चुपचाप चले गये। साहेब के हाथ में हाथ डालकर मैं कितनी ही देर बैठी रही—समाधान की मनःस्थिति में। इतने वर्षों से कभी प्राप्त न होने वाला समाधान आज मुझे मिल गया था। मैंने अपना संसार उस घेरे में केन्द्रित कर दिया था। मुझे एक निराली अनुभूति मिल रही थी—सुख की, सन्तोष की।

मन का रंग | शकुन्तला गोगटे

९

बबई-कोल्हापुर एम०टी० बस अडडे स रवाना हुई, तब मैं विचारो मे डूबी हुई थी। जिद करके ही तो मैं कोल्हापुर जाने के लिए निकली थी। मा को पसन्द नही आ रहा था कि मैं अकेली जाऊ। उसन मुझसे पूछा था

"सुमित्रा, तू कोल्हापुर जाकर क्या करेगी ? बेचारी गौरी तो चली ही गयी। अब तो किसी भी उपाय से वह वापस नही आ सकती। पिछली बार जब तू कोल्हापुर जाकर आयी थी, उस समय की तेरी दशा याद करके तो मैं आज भी सिहर उठती हू।"

"पर मा, उस समय की तो बात ही दूसरी थी। गौरी का पत्र पाकर ही उस धैर्य बधाने के लिए मैं वहा गयी थी, किन्तु फिर तो वह दुखद घटना हो गयी। गौरी अचानक जाती रही। उस घटना का मेरे मन पर भयकर परिणाम होना स्वाभाविक नही था क्या ?"

"बेटी, बात तो सही है, पर फिर से कोल्हापुर जाकर तुझे वे ही सारी यादें सतायेंगी। निष्कारण ही तेरा दु ख बढ जायेगा।"

"मां, चौदह तारीख को गौरी का वर्षश्राद्ध है। मैं एक प्रकार से गौरी को श्रद्धाजलि अर्पित करने ही कोल्हापुर जा रही हू।"

"तिथि के अनुसार परसों ही तो अपन ने गौरी की पुण्यतिथि मना ली। उसका श्राद्ध करने का अधिकार तो इन्द्रजीत का है। तू जाकर क्या करेगी ? सुमित्रा, मैं गौरी की मा ही तो हू। तुम दोनो लडकिया मेरे कलेजे के टुकडे ही थीं। तुम दोनो को देख कर लडका न होने पर भी हम दोनो

आनन्द से जी रहे थे। हमारे इस आनन्द को न जाने किस की नज़र लगी है। गौरी तो चली ही गयी और तू भी इन दिनो बडा विचित्र व्यवहार करने लगी है। मा होकर भी मैं तुझे समझ नहीं पा रही हू। कोल्हापुर छोडकर बबई आने के बाद से ही तेरा स्वभाव अजीब ढग से बदल गया है। गौरी के वर्षश्राद्ध के लिए कोल्हापुर जाने की क्या जरूरत है। दुखी मन को और यातना क्यो? वास्तव मे तो विस्मरण द्वारा मन को शान्त करना चाहिए।"

"मा, कृपा करके इस समय मुझे मत रोक। गौरी के मृत्युस्थल पर ही उसे श्रद्धाजलि देने की मेरी इच्छा है। केवल इस वर्ष, प्रथम पुण्यतिथि पर। मैं हर वर्ष थोडे ही जाऊगी। छोटी बहन के प्रति कर्तव्य-पूर्ति का मुझे समाधान मिलेगा—इस बार तो तू जाने ही दे।"

मा को मेरी बातो से समाधान नही मिला था, पर मेरी भावना को कष्ट देना भी उसके लिए सम्भव नही था। कुछ बाध्य होकर उसने मुझे परवानगी दे ही दी। अण्णा की तबीयत ठीक नही थी, नही तो मा भी मेरे साथ आने को कहती—एक प्रकार से अच्छा ही होता।

मा ने पूछा, "तू कोल्हापुर कहा उतरेगी? अपने घर?"

'नही, अपने घर तो अकेला इन्द्रजीत होगा। इस बार तो मैं अपनी मास्टरनी बाई—

२

स्टैंड पर प्रत्यक्ष इन्द्रजीत को देखकर मैं पागल की तरह अपनी सीट पर ही बैठी रह गयी। सभी लोग फटाफट बाहर निकल गये। क्षण-भर विचार किया कि इसी बस से वापस बबई चली जाऊ पर गाडी तो खाली होकर डिपो मे जाने वाली थी। उतरना तो पडेगा ही।

विवश होकर उठी, सीट के नीचे से छोटा बैग निकालकर भारी अनिच्छापूर्वक उतरने लगी। मुझे देखते ही इन्द्रजीत ने दौडकर बैग हाथ मे से ले लिया। मुझे उतरने मे मदद देने हेतु उसने दूसरा हाथ बढाया,

किन्तु मेरे चेहरे के भाव देखकर उसने हाथ वापस खींच लिया।

फिर भी भावावेग में वह बोल उठा, "मुम्मी, आज कितने दिनों में मुझसे मिली।" मुझे लगा कि मैं मूर्च्छित हो जाऊंगी। इन्द्रजीत के शब्द सुनकर अनजाने ही मेरा मन झंकृत हो उठा था। इच्छा हुई उससे पूछूं, "जीतू, कितने समय बाद 'मुम्मी' का सम्बोधन मैंने सुना।" सभी लोग मुझे सुमित्रा कहते थे, केवल इन्द्रजीत ही तो 'मुम्मी' कहकर पुकारता था—मैं उसे जीतू कहती थी। किसी समय हम पागलपन की हद तक एक-दूसरे को प्रेम करते थे। गौरी से शादी करने के पश्चात मैंने उसे एक बार भी जीतू नहीं कहा था। अब इस समय जीतू नाम मेरे मन में कैसे आया?

नहीं! मन का इस प्रकार भावुक होना ठीक नहीं।

मन को नियन्त्रित करके मैंने अपनी चर्या निर्विकार भावशून्य बना ली और ठंडी नजर से इन्द्रजीत की ओर देखा। उसका चेहरा देखते ही लगा कि इस एक वर्ष में ही इन्द्रजीत कितना बदल गया? उसकी आंखों के नीचे कालापन, ललाट पर सलवटों द्वारा बनी रेखाएं, कान के पास बालों में सफेदी, बढ़े हुए अस्त-व्यस्त बाल, मुसमुसाए कपड़े! उसकी दाढ़ी के बढ़े हुए खूंटे तो मैंने पहली बार देखे थे। इन्द्रजीत कितना व्यवस्थित रहता था। कारखाने से वापस लौटकर वह घर पर भी इस्त्रीदार कुर्ता पाजामा पहनता था। इन्द्रजीत दुबला भी दिखाई दे रहा था। यह सब कैसे हुआ? क्यों हुआ?

इन्द्रजीत वास्तव में अपराधी होगा क्या?

उसका ही मन उसको खा रहा होगा क्या?

उसी ने गौरी का खून···

अन्त में मन का प्रक्षोभ शमन करके मैंने पूछा, "तुझे कैसे पता चला कि मैं इस गाड़ी से कोल्हापुर आ रही हूं?"

मेरा प्रश्न सुनकर उसने मेरी ओर गहरी निगाह से देखा और निश्वास छोड़कर बोला—

"जिस व्यक्ति पर अपना वास्तविक प्रेम होता है, उसकी हलचल मनुष्य को अपने आप महसूस हो जाती है। कभी-कभी दैव मनुष्य को

छलता है, तो कभी-कभी अनपेक्षित रूप में उसकी मदद के लिए भी दौड़ता है।"

"इन्द्रजीत, स्टॉप इट! मुझे यह भाषा अच्छी नहीं लगती। मेरे प्रश्न का सीधा उत्तर देना हो तो दे।"

"ठीक है। सरल उत्तर देता हूं। आज अचानक ही दैव की लहर आ गयी और उसने मेरी सहायता करने की सोची। मेरा यह कथन शत-प्रतिशत सही है। सगुणाबाई पारसनीस के सदू से आज प्रातः रास्ते में अचानक मुलाकात हो गयी। उसी ने मुझे बताया कि तेरा पत्र आया है और तू आज बस से कोल्हापुर आयेगी, बाई के पास ठहरेगी। यह सुनकर मुझे आश्चर्य का धक्का लगा। यहां कोल्हापुर में अपना स्वयं का घर होते हुए तू सगुणाबाई के घर उतरे, सुम्मी, यह शोभनीय है क्या?"

"मुझसे सुम्मी कहने की जरूरत नहीं, सीधा सुमित्रा बोल।" मैंने आवेश में आकर कहा। उसका चेहरा फीका पड़ गया। थोड़ा संयमित होकर मैंने कुछ हंसी-सी दिखाकर कहा, "अरे, बाई कोई परायी है क्या? मैं बालबोध से लेकर मैट्रिक तक उनमें पढ़ी हूं, एक पूरा युग—बारह वर्ष। इसके अलावा उनका और हमारा खूब घरोपा है। बंबई जाने के बाद से ही वे बार-बार आग्रहपूर्वक कुछ दिन रहने के लिए मुझे बुला रही हैं। इसीलिए उन्हीं के पास ठहरूंगी।"

"तू कुछ भी बोल, पर वे तेरे लिए मेरी अपेक्षा परायी है। मैं तुझे उनके पास कैसे उतरने दूंगा। मैं तो उसी समय सदू के साथ गया। उनसे मिलकर कह आया कि सुमित्रा तुम्हारे यहां नहीं ठहरेगी। वह मेरे पास अर्थात् अपने पुराने घर रहेगी। मैंने उन्हें बता भी दिया था कि सदू की एवज मैं ही एस०टी० स्टैंड जाऊंगा। उन्हें भी मेरी बात ठीक लगी। कहने लगी कि सुमित्रा तेरे ही यहां ठहरे, मैं एक दो-बार भोजन के लिए यहां जरूर बुलाऊंगी।

"धन्यवाद, इन्द्रजीत! पर मैं समझती हूं कि पत्र में लिख देने के कारण मुझे बाई के पास ही जाना चाहिए। एकाध बार भोजन के लिए तेरे यहां आऊंगी।"

"नो, नो, नथिंग डूइंग। ऐसा कुछ नहीं चलेगा। राधा मौसी ने घर

पर तेरे लिए भोजन भी बना लिया है। राधा मौसी पहले की तरह अभी भी मेरे घर काम करती है।"

मैं क्षण-भर चुप रही। विचार करने लगी कि यदि राधा मौसी इन्द्रजीत के पास रहती हैं, तो वहां ठहरने में कोई विशेष आपत्ति नहीं है। मेरे उत्तर देने से पूर्व ही इन्द्रजीत बोला—

"मुन्मी···सॉरी, सुमित्रा, जल्दी चल। यदि देर की, तो तुझे एक आफत का सामना करना पड़ेगा। थोड़ी देर पहले हीराबाई बागले का सेक्रेटरी सन्ध्या नाइक मिला था। उसने बताया कि किसी नेता को लेने के लिए हीराबाई स्टैंड पर आ रही है। बस आने में अभी पन्द्रह-बीस मिनट की देर है, किन्तु हीराबाई तो बहुत उत्साही है, वह किसी भी क्षण आ टपकेगी। स्वयं को बहुत बड़ी सामाजिक कार्यकर्ता समझकर किसी के भी फटे में पांव पसारने वाली यह लोचक-भवानी अगर तुझे मिल गयी तो फिर खैर नहीं। फिर तेरा छुटकारा मुश्किल है। चल, जल्दी कर, एकदम।"

हीराबाई को मैं अच्छी तरह समझती थी। उसे हर तरह से टालने का तो मैंने बबई से ही तय कर रखा था। उसका नाम सुनते ही मैं इन्द्रजीत के साथ फटाफट चल दी। हम चार कदम भी नहीं चले होंगे कि हीराबाई बिल्ली की तरह आगे आ गयी। मुझे देखते ही आनन्द प्रदर्शित करते हुए खनखनाती आवाज़ में बोली—

"अरे, वाह! कौन सुमित्रा! सूर्यमुखी का यह फूल अकस्मात् इस समय यहां से खिल उठा? तू कोल्हापुर में कैसे अकेली आयी है? अण्णा और मां शायद नहीं आये।" नजदीक आकर मेरा हाथ पकड़कर बोली, "तेरे दर्शन का अलभ्य लाभ हुआ, पर इस तरह गुपचुप आना ठीक नहीं, मुझे जरा भी खबर नहीं लगने दी···"

"हीराबाई, मैं कोई नेता या वी०आई०पी० नहीं—क्या कोल्हापुर-भर में मेरे आने का विज्ञापन करना चाहिए था।"

"समझी-समझी तेरा ताना—पर हम सामाजिक कार्यकर्ताओं की खाल गेंडे की होती है। कोई कितना भी तीखा बोले, हमारे घाव नहीं होते। फिर तू भी तो कोल्हापुर में कोई गुपचुप नहीं आयी है। तेरे बहनोई को तो सूचना तूने दी थी, यह तो साफ ही है।"

हीराबाई ने इन्द्रजीत का उल्लेख बहनोई के रूप में कटाक्षपूर्वक ही किया था। गोरी से विवाह होने से पूर्व इन्द्रजीत तथा मेरे प्रेम की जानकारी सिर्फ हीराबाई को ही थी। एक बार उन्होंने मुझे इन्द्रजीत के बाहुपाश में देख लिया था। उन्होंने प्रेम-भरे स्वर में कहा—

"सुमित्रा, अब मुझसे खूब सारी गपशप किये बिना वापस जाना नहीं है, हां। तू कोल्हापुर में स्थायी वास करने के लिए ही आ गयी हो, तो बात अलग है। तूने ऐसा निश्चय किया हो, तो मुझे आश्चर्य नहीं है। वास्तव में मुझे आनन्द ही होगा। देर से ही सही—ठीक बात हो जाना अच्छा ही लगता है।" उन्होंने इन्द्रजीत की ओर हल्का कटाक्ष भी किया।

क्रोध में मैंने होंठ चबा डाले

"मैं यहां दो दिन के लिए आयी हूं। सम्भव हुआ, तो तुमसे भेंट करूंगी। पर अभी तो छुट्टी दो—बंबई से बस के सफर से बहुत थक गयी हूं।"

"अरे, बाप! मैंने तुझे कोई बांध रखा है!" इन्द्रजीत की ओर साभिप्राय दृष्टि डालते हुए उन्होंने कहा, "तू जा इन्द्रजीत के साथ—तुम दोनो के बीच में मैं तीसरी क्यों आऊं? मुझे भी तो जल्दी है। पूना से एक नेता कोल्हापुर आ रहे हैं, उन्हें लेने आयी हूं। अच्छा, मुझसे मिले बिना जाना नहीं।"

हीराबाई मुझसे विदा लेकर जल्दी-जल्दी चलने लगी। दो-सौ पौंड वजन की भारी-भरकम बाई पता नहीं किस प्रकार इतना तेज चल पा रही थी। मैंने छुटकारे की सांस ली। इन्द्रजीत तो गुस्से में लाल हो रहा था। बोला, "टालने के पूरे प्रयत्न के बाद भी यह बिल्ली रास्ता काट ही गयी। यह तो कोल्हापुर का चलता-बोलता रेकार्ड है। अब गांव-भर में ढोल पीटेगी और तेरे कोल्हापुर आने की बात शाम तक नगर-भर में फैल जायेगी।"

मैं देखती रह गयी। एक बार मैंने जिससे प्रेम किया था, निर्झर की तरह कल-कल करके हंसने वाला, पक्षियों की तरह मंजुल प्रेम-कलरव करने वाला और किसी भी स्थिति में न चिढ़ने वाला इन्द्रजीत आज कितना कड़वा हो रहा था? वह कितना बदल गया था? या मैं ही उसे नहीं पहचान पायी थी?

खैर, इन्द्रजीत कैसा भी हो ? मेरा उससे क्या सम्बन्ध !

गौरी की मृत्यु का रहस्य ? यही ढूढने तो यहा आयी हू, फिर तो कोल्हापुर मे भी क्या लेना-देना !

इन्द्रजीत ने एक रिक्शा रोका। मैं एक कोने मे इस तरह सिकुडकर बैठ गयी कि इन्द्रजीत के कपडो का भी स्पर्श न हो। रिक्शा से शाहपुरी के अपने पुराने घर की ओर जाते हुए कोल्हापुर के अनेक स्थानो को मैंने पहचाना और वहा छिपी अनेक स्मृतिया मन मे जागृत हो उठी। इन्द्रजीत इस समय जिस घर मे रहता था, वह घर मेरे अण्णा ने पन्द्रह वर्ष पूर्व बनवाया था। उससे पूर्व हम कोल्हापुर मे किराये के मकान मे रहते थे। नये घर मे हम चारों—अण्णा, मा, मैं और गौरी रहने लगे। अण्णा वकील थे। उन्होंने वकालत छोडकर बम्बई मे जज की नौकरी स्वीकार कर ली, तब प्रश्न आया कि यह घर बेच दिया जाये अथवा किराये उठाया जाय ?

पर इससे पूर्व ही एक विलक्षण घटना हो गयी।

गौरी घर से भाग गयी।

उसने इन्द्रजीत से गुपचुप लग्न कर लिया—कुरुन्दवाड के निकट नरसोबा की वाडी मे जाकर !

यह स्मृति क्यो ? वास्तव मे मैं क्या विचार कर रही थी ? ...हा, याद आया ! ...

अण्णा ने बम्बई जाने का तय किया और उसी समय गौरी ने इन्द्रजीत से विवाह कर डाला। अण्णा ने घर न तो बेचा, न ही किराये पर दिया। गौरी स्थायी रूप से कोल्हापुर मे ही रहने वाली थी, इसीलिए वह मकान गौरी को उपहार मे दे दिया। मां ने भी गौरी के लिए आभूषण बनवा दिये। बैंक मे उसके नाम से दस हजार रुपये भी जमा करा दिये। मेरे माता-पिता ने बडे स्नेह से गौरी को विवाहोपहार दिये थे। इन्द्रजीत भी तो घर के लडके जैसा ही था। उसके पिता एडवोकेट श्यामराव पाटकर हमारे अण्णा के जिगरी दोस्त थे। इसीलिए मा और अण्णा ने गौरी के इस विवाह को भी आनन्दपूर्वक आशीर्वाद दिया।

पर पर किसी को कल्पना भी नहीं थी कि मैं इन्द्रजीत से प्रेम करती हूं—केवल गौरी को छोडकर। मां और अण्णा को तो केवल इतना-सा ही

मन [illegible]

घटना कि छोटी बहन का विवाह पहले हो गया। गौरी-इन्द्रजीत के विवाह की बात जानकर ही मेरे मन पर कैसे वज्राघात हुआ होगा, इसकी कल्पना भी किसी को नही हुई, पर अच्छा ही हुआ। अपने मनस्ताप से मैं अकेली जूझी। किसी प्रकार की गडबड नही हुई। मा और अण्णा तो केवल यही समझे कि बडी बहन के विवाह से पूर्व लग्न करने की इजाजत न मिलने के डर से ही गौरी ने घर से भागकर लग्न कर लिया" दूसरे लोग भी यही समझे। इसीलिए किसी ने मुझसे सहानुभूति प्रकट नही की, अन्यथा मेरा मनस्ताप और अधिक बढता। सम्मान की चर्चा जग मे करनी चाहिए, किन्तु अपमान तो मन मे दबाना पडता है। गौरी ने मेरा दोहरा अपमान किया था। प्रथम तो छोटी होते हुए भी उसने पहले शादी कर ली और दूसरा यह कि मेरे प्रियतम का अपहरण कर लिया। सुदैव से दूसरे अपमान की जानकारी किसी को नही थी।

मैंने उसी समय मन में सोच लिया था कि एक बार बम्बई जाने के बाद फिर से कोल्हापुर मे पाव नही रखना। पर मुझे अपनी प्रतिज्ञा दो बार तोडनी पडी। एक बार तो गौरी का याचना-भरा पत्र पाकर मुझे कोल्हापुर आना पडा था और अब दूसरी बार स्वय सोच समझकर कोल्हापुर आयी थी—

अपने मन के समाधान हेतु, गौरी की मौत का रहस्य ढूढने इन्द्रजीत को दडित कराने हेतु।

रिक्शा घर के दरवाजे पर रुक गया और मेरे मन के विचार भी थम गये।

३

इन्द्रजीत आगे और मैं चार कदम पीछे। हम घर के दरवाजे पर पहुचे। सूटकेस सीढी पर रखकर इन्द्रजीत बोला—

"जरा ठहर, मैं ताला खोलता हू।"

ताला! बाहर के दरवाजे पर ताला देखकर मैं चमक गयी। मेरी तो

अपेक्षा थी कि राधा मौसी आकर दरवाजा खोलेगी। मैंने इन्द्रजीत से पूछा—

"राधा मौसी तेरे साथ ही रहती हैं न? फिर वह कहा गयी? तेरी बात से तो मैं यही समझी थी कि राधा मौसी हमारी राह देख रही होंगी।"

दरवाजा खोलकर सूटकेस हॉल की टेबुल पर रखते हुए इन्द्रजीत बोला—

"मैंने यही कहा था कि राधा मौसी ने तेरे लिए भोजन तैयार करके रखा है। वे मेरे पास रहती नहीं हैं—अपने बच्चों के साथ रहती हैं। दोनों समय आकर भोजन बनाती है तथा दूसरे काम कर देती हैं। अब उनसे तेरी भेंट शाम को ही होगी।"

द्वार पर ही ठिठककर मैं बेचैन हो उठी। घर में यदि इन्द्रजीत अकेला रहता है, तो मैं यहां कैसे रह सकूंगी। इतने में इन्द्रजीत फिर बोला—

"मैंने उनसे कह दिया है कि जब तक तू यहां है, तब तक रात में वे यहीं सोयें। अभी शाम को आयेंगी। कल सुबह भी भोजन बनाकर दोपहर में ही वापस जायेंगी। वास्तव में तो मैंने उनसे चौबीसों घंटे यहा रहने को कहा था, किन्तु अभी हाल ही में उनकी लड़की की दूसरी प्रसूती होने के कारण दोपहर में उन्हें घर जाना ही पड़ेगा।"

मैंने सन्तोष की सास ली कि इन्द्रजीत ने कम-से-कम मौसी से यहां सोने को कहने की व्यावहारिक बुद्धि तो दिखायी।

राधा मौसी रात को यहां रहने वाली है, फिर मेरे यहां ठहरने में कोई आपत्ति नहीं है। दोपहर में इन्द्रजीत के साथ अकेले रहने की बात खटकती जरूर लग रही थी, पर मैं भी कौन-सी घर पर ही रहने वाली थी। शाम तक का समय तो मैं इधर-उधर मिलने-जुलने में बिता सकती थी।

अन्दर आते हुए मैंने कहा, "पहले हाथ-पाव धोकर कपड़े बदल लेती हूं।"

"तू अभी भोजन करेगी अथवा पहले चाय या कॉफी लेगी?"

"थोड़ी चाय चल सकती थी, पर राधा मौसी तो हैं नहीं, कौन बनायेगा।"

"उसमें क्या हुआ? मैं बढ़िया चाय बना सकता हूं। चाय तो क्या

मैंने खाना बनाना भी सीख लिया है। चाय के लिए तो तू भी मुझे सर्टीफिकेट दे देगी। देख, तेरे पहले वाले कमरे में ही तेरी व्यवस्था कर दी है। तेरा सूटकेस ऊपर तेरे कमरे में पहुंचा देता हूं। पास के बाथरूम में ही पानी भी है। तू कपड़े बदलकर आ, तब तक चाय बनाता हूं।"

"ठीक है," मैं थोड़े रूखेपन से ही बोली। इन्द्रजीत ने भोजन बनाना सीख लिया, इस बारे में मैंने कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं की। जीना चढ़कर मैं अपने कमरे की ओर जाने लगी तो मेरी दृष्टि स्वयमेव तीसरी मंजिल के जीने के कोने में स्थित कमरे के बन्द दरवाजे की ओर घूम गयी।

इसी कमरे में तो गौरी की मृत्यु हुई थी—हार्टफेल से—नहीं, सम्भव ही नहीं।

पर गौरी मरने से पूर्व कुछ दिनों से छाती में दर्द की शिकायत कर रही थी तथा डॉक्टर प्रधान ने जांच करके उसे कुछ गोलियां दी थीं—इन्द्रजीत ने ही तो बताया था। डॉक्टर प्रधान ने इसकी पुष्टि भी की थी।

पर गौरी की छाती में दर्द था—इसके लिए वह गोलियां भी ले रही थी, फिर तीन जीने चढ़कर ऊपर कैसे गयी? क्यों गयी?

इस मंजिल से तो गौरी बचपन से ही भयभीत थी।

वह कभी जिद्द करती अथवा रोती तो अण्णा कहते, "ऊपर बन्द कर दूं क्या? हौवे को पकड़वा दूं?" गौरी समझती थी कि तीसरी मंजिल पर कोई भयंकर हौवा रहता है और तीसरी मंजिल में बंद करने के नाम से ही वह चुप हो जाती।

उसी मंजिल में गौरी की मुलाकात कौन से हौवे से हो गयी? इस कल्पना से ही मैं सिहर उठी।

गौरी ने मेरे प्रति असम्य अपराध किया था, तो भी बाद में उसे पश्चाताप हुआ था। उसने मुझे बुलाकर क्षमा मांगी थी। स्वयं की गलतियां स्वीकार की थीं। हम दोनों बहनों ने गले लगकर खुले दिल बातचीत की थी। फिर गौरी ने मुझे क्यों नहीं बताया कि उसकी छाती में दर्द होता है। और इसके लिए प्रधान काका से औषधि ले रही थी?

अच्छा हुआ सगुणाबाई के यहां न जाकर अपने ही घर रुकी। यहां

स्वर गौरी की मृत्यु का रहस्योद्घाटन करवाना सुलभ होगा। यदि कोई प्रमाण हुआ, तो यहीं मिलेगा।

मैंने इन्द्रजीत से पूछा, "इन्द्रजीत, तूने प्रश्न नहीं किया कि मैं कोल्हापुर एकाएक क्यों आयी?"

"अब पूछता हूं, मुम्मी, तू कैसे आयी? माफ कर! आगे से ध्यान रखकर सुमित्रा कहने का प्रयास करूंगा। हां तो, तू आयी कैसे?"

"तारीख के अनुसार कल गौरी का श्राद्ध दिन है।"

वह एकदम मूक हो गया।

मैंने ही आगे कहा, "मेरी इच्छा हुई कि गौरी की जहां मृत्यु हुई, वहीं जाकर उसे श्रद्धांजलि अर्पित करूं, उसका धार्मिक श्राद्ध तो तिथि अनुसार तूने किया होगा?"

"अपना कर्तव्य मैंने पूरा किया।"

"वाह, बहुत बढ़िया! तुझे कर्तव्य का ज्ञान तो है?"

"सुमित्रा, तेरे प्रति मैंने बहुत बड़ा अन्याय किया, पर यह सब कैसे हुआ, क्यों हुआ—तूने मुझसे कभी नहीं पूछा। मैंने स्वयं से तुझसे कहने का कई बार प्रयास किया पर तू कुछ सुनती ही नहीं है। सत्य से दूर-दूर भागती रही है।"

"पर अब इस प्रकार की मूर्खता मैं नहीं करूंगी। मेरा सत्य-शोध अब तुझे ही पसन्द नहीं आयेगा।"

"मैंने गौरी से लग्न क्यों किया, यह तुझे समझना ही चाहिए था।"

"अब मैं अपनी भूल ठीक करूंगी और सत्य से न भागकर जितना अधिक सम्भव हुआ, उसके निकट जाऊंगी। प्रारम्भ से जो-जो हुआ, सब कुछ जानकर रहूंगी—तुम दोनों ने विवाह क्यों किया—वहां से लेकर गौरी की मृत्यु तक।"

इन्द्रजीत एकदम बेचैन होता दिखायी दिया। मेरी निगाह चुराकर उसने कहा—

"गौरी की मृत्यु के समय तू यहां थी, उस समय जो कुछ हुआ उसकी सारी जानकारी तुझे है। तुझे ज्ञात नहीं है तो उससे पूर्व का इतिहास।"

मुझे उसकी धूर्तता पर हंसी आयी। मैंने तुच्छता भरे स्वर में कहा,

"इस समय इतिहास-संशोधक की भूमिका में ही यहां आयी हूं। जो कुछ मुझसे छिपा है, उसे ज्ञात करके ही कोल्हापुर से वापस जाऊंगी। पर अभी तो इस विषय को बन्द करें। मैं बहुत थकी हुई हूं।"

"आय एम सॉरी, मैं चाय बनाने नीचे जाता हूं। मुझे भी अभी गप-शप के लिए फुरसत नहीं है। घंटे-भर के लिए मुझे वर्कशॉप जाना ही पड़ेगा। तू चाय पीकर थोड़ा विश्राम कर। मेरे वापस आने पर अपन भोजन करेंगे। तेरे आने की पूर्व सूचना न होने से वर्कशॉप के लिए आज दूसरा प्रबन्ध नहीं कर सका।"

"कोई चिन्ता नहीं। तू अपने काम से जा। दोपहर में भोजन करेंगे।"

वह नीचे चला गया। मैं भी मुंह-हाथ धो साड़ी बदलकर थोड़ी ही देर में नीचे रसोईघर में पहुंची। चाय तैयार थी।

चाय बहुत बढ़िया बनी थी। मेरी यात्रा की थकान कम हुई। इन्द्रजीत मेरी ओर इस अपेक्षा से देखता रहा कि मैं चाय की प्रशंसा करूं। चाय समाप्त होने तक मुझे कुछ भी कहते न देखकर आखिरकार उसी ने पूछ लिया—"कैसी थी चाय ?"

"ठीक थी।" मैंने रुखाई के साथ कहा।

"लगता है चाय का स्वाद कुछ बिगड़ गया था," चर्या गिराते हुए वह बोला।

मैंने कहा, "चाय अच्छी नहीं बनी, यह मैंने कब कहा। अच्छी थी।"

"ओह!" उसने कहा, "और चाहिए, अभी है।" चाय की और इच्छा होते हुए भी मैंने कहा, "नहीं, बस। चाय के लिए धन्यवाद।"

"एक कप चाय बेकार जायेगी। मैं आधा कप लेता हूं पर बाकी'।"

"ठीक है, आधा मुझे भी दे। चाय बेकार क्यों जाने दें?" मैं यों बोली, जैसे उस पर उपकार कर रही हूं। चाय के बाद वह कप उठाने लगा, तब मैंने कहा, "कप-बशी मैं धो डालूंगी। तू जा अपने काम पर।"

उसने विरोध नहीं किया।

"भोजन के लिए घंटे-भर में आता हूं," कहकर वह वर्कशॉप की ओर चला गया। उसके जाने के बाद मैंने घर का दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर

लिया। चाय के बरतन साफ करके ऊपर के हॉल में आयी और पखा चलाकर सोफे पर बैठ गयी। चारो ओर दृष्टि दौड़ायी।

हा, यही तो वह दीवानखाना है जहा आस-पास किसी को न देखकर इन्द्रजीत ने एक बार मेरा चुम्बन ले लिया था और सयोगवश उसी समय हीराबाई बगले खुले दरवाजे से अन्दर आ टपकी थी। मैं फुर्ती से इन्द्रजीत के आलिगन से मुक्त हो गयी, किन्तु समझ गयी थी कि हीराबाई ने हमे रंगे हाथो पकड़ा है।

इन्द्रजीत नेकर पहनता था और मैं और गौरी फ्राक पहनते थे, उसी समय से हम एक-दूसरे को देख रहे थे। हमारे अण्णा और श्याम काका—इन्द्रजीत के पिता श्यामराव पाटकर एडवोकेट—दोनो छात्र जीवन से ही दोस्त थे। दोनो ने पूना के ला कॉलेज से एक साथ ही एल-एल०बी० की डिग्री ली, दोनो ने कोल्हापुर मे साथ ही प्रैक्टिस शुरू की, पर अलग मार्ग मे। अण्णा सिविल कोर्ट मे तथा श्याम काका क्रिमिनल साइड मे प्रैक्टिस करने लगे थे। योगायोग से दोनो का विवाह भी एक ही वर्ष मे हुआ। इन्द्रजीत के जन्म के दो वर्ष पश्चात् ही श्याम काका की पत्नी का देहान्त हो गया। इसी वर्ष हमारे अण्णा की पहली लड़की भी चल बसी। श्याम काका ने इन्द्रजीत की मा के मरने के बाद दूसरी शादी नही की और राधा मौसी ने इन्द्रजीत को पाल-पोसकर बडा किया। यह सही है कि इन्द्रजीत को बाप से भी पूरा प्यार नही मिला।

मातृहीन बालक इन्द्रजीत पर हमारी मा को बहुत दया आती थी। अपनी पहली लड़की मर जाने से वह इन्द्रजीत को उसका पूरक मानकर उसमे बहुत ममता करने लगी थी। दो वर्ष बाद मेरा जन्म हुआ और मेरे बाद गौरी हुई। थोड़ी बडी होते ही मैं अनेक बार इन्द्रजीत के साथ राधा मौसी के घर भोजन कर लेती और मा चिढ़ती। ऐसे हमारे दोनो घरो मे खूब घरोपा था।

हम तीनो—इन्द्रजीत, मैं और गौरी एक साथ हसते-खेलते बड़े हुए। हमने यौवनकाल मे प्रवेश किया और मैंने अनुभव किया कि इन्द्रजीत मुझे बहन की निगाह से नही देखता। मैंने उस दृष्टि में कुछ परिवर्तन महसूस किया और यह बदलाव मुझे बहुत ही प्यारा लगा। हमारे बीच अनुराग का

निर्माण स्वाभाविक था। एक दिन रकान तालाब के किनारे हमने परस्पर प्रेम की स्वीकृति दी। किसी को पता न लगने देते। हम एक-दूसरे को प्यार करने लगे।

वास्तव में छिपकर प्यार करने का कोई कारण नहीं था। हम दोनों के प्यार पर दोनों ही घरों में किसी आपत्ति का प्रश्न ही नहीं था। पर यह बात खोलने से पहले ही श्याम काका अचानक हार्ट फेल से चल बसे। इन्द्रजीत हर तरह से अनाथ हो गया। वह उस समय बाईस वर्ष का था और सांगली में इंजीनियरिंग के अन्तिम वर्ष में पढ़ रहा था। हर शनिवार-रविवार को घर आता था। श्याम काका के चले जाने से विवाह की हमारी योजना अपष्ट हो गयी। इन्द्रजीत ने कॉलिज के अन्तिम छह महीने किसी तरह पूरे किये, पर अभ्यास में पूरा ध्यान न दे पाने से उसे बी०ई० में डिवीज़न नहीं मिला।

उसने तय किया कि नौकरी न करके स्वयं का एक इंजीनियरिंग वर्कशॉप खोले और धीरे धीरे बढ़ाकर उसका रूपान्तर कारखाने में कर दे। शौकीन मिजाज के उसके पिता अधिक सम्पत्ति नहीं छोड़ गये थे। इन्द्रजीत को जो कुछ मिला, वह वर्कशॉप में लग गया। वह स्वयं बहुत जिद्दी था, बहुत मेहनती था। उसमें जबरदस्त आत्मविश्वास था। उसका साहस, उसका कर्तृत्व मुझे बहुत प्यारा लगता था और मैं उसे प्रोत्साहन देती थी। बस केवल इतना ही सोचती थी कि उसका काम अच्छी तरह जमने से पूर्व हम शादी न करें।

पर इन्द्रजीत मेरे लिए नहीं रुका था।

एक दिन अचानक ही उसने गौरी से विवाह कर लिया।

इन्द्रजीत ने मुझसे भयंकर विश्वासघात किया था।

पहले मुझसे विश्वासघात!

और बाद में गौरी का घात!

इन्द्रजीत को मैं ठीक प्रकार नहीं समझ पायी थी क्या?

यदि वह खूनी है, तो इस प्रकार व्यवहार कैसे कर सकता है?

मैं अभी भी समझ नहीं पा रही थी, वह वास्तव में कैसा है।

मैं अंधेरे में ही भटक रही थी।

मन की बेचैनी कम करने और समय व्यतीत करने के दोहरे उद्देश्य से मैं पुस्तकों की अलमारी के पास गयी और उसे खोलकर पुस्तकें टटोलने लगी।

यदि पढ़ने के लिए ही मुझे पुस्तक का चयन करना होता, तो उस अलमारी में अग्रेजी मराठी के कई उपन्यास, नाटक, कथा-सग्रह थे—पर शायद मैं न समझते हुए भी 'भावतरग' ढूंढ रही थी। मेरी अठारहवी वर्ष-गाठ पर इन्द्रजीत द्वारा दी गयी भेंट गौरी की मृत्यु से पूर्व जब मैं कोल्हापुर आयी थी। तब उसकी मृत्यु के दिन वही पुस्तक गौरी के पलग पर पड़ी हुई देखी थी। गौरी और इन्द्रजीत के विवाह के बाद मैं अपना सारा सामान सम्हालकर बबई ले गयी थी, पर 'भावतरग' जान-बूझकर इसी घर में छोड़ गयी थी।

—फिर मैं अभी यह पुस्तक क्यों खोज रही थी ?

मकड़ी के जाल में मूर्खतावश फसी मक्खी, छुटकारे के लिए जितने हाथ-पैर मारती है उतना ही अधिक उलझती है, मेरे मन का भी यही हाल हो रहा था।

इन्द्रजीत से दूर जाने के प्रयास में यह जानकर भी कि इन्द्रजीत जाल फैलाकर उसमें फसने वाली मक्खियों का भक्षण करने वाला बदमाश है, उसका दाव उसी पर कैसे उलटा जाय—इस प्रकार के विचारों में उलझा मेरा मन...

बार-बार उसी जजाल में उलझ रहा था।

मैं वह काव्य सग्रह क्यों खोज रही थी ?

पुरानी यादें मन में क्यों उठ रही हैं ?

इन्द्रजीत ने बताया था कि वह मुझसे प्रेम करता है। मैंने उससे मजाक करते हुए कहा था—

"जीतू ! तूने मुझमे ऐसा क्या देखा, जो तू मुझसे प्रेम करने लगा। हमारे घर के तो सभी लोग गौरी को मुझसे सुन्दर समझते हैं। गौरी का केतकी जैसा गौर वर्ण और समुद्र की गहराई जैसी नीली आखें सभी को बहुत

मन का

अच्छी लगती हैं। फिर गौरी के रहते मैं तेरी आंखों में कैसे समा गयी ?"

उस समय इन्द्रजीत ने कोई उत्तर न देकर मेरा हाथ अपने दोनों हाथों से जोर से दबाया था। यह मूक उत्तर मेरे भावुक मन को बहुत भाया था। पर बाद में मेरे जन्मदिन पर इन्द्रजीत ने 'भावतरंग' की भेंट मेरे प्रश्न के उत्तर में ही दी थी। उस काव्य-संग्रह पर कवि का केवल उपनाम 'मनस्वी' छपा था। इन्द्रजीत ने पुस्तक देते हुए कहा था—

"सुम्मी, तूने कभी प्रश्न किया था न कि मैंने तुझसे प्रेम क्यों किया ? तेरे प्रश्न का उत्तर इस पुस्तक के उन्नीसवें पृष्ठ पर तुझे मिलेगा।"

उसके शब्दों से मेरा कौतूहल जाग उठा था। मैंने अधीर होकर पृष्ठ खोला। उस पृष्ठ पर कविता का शीर्षक था—'तेरी आंखें'। मुझे वह कविता आज भी शब्दशः याद है—

सखी, तेरी आंखों में नभ का नीलापन भले न हो,
सागर और लहरों की हरी घटा चाहे न हो।
पर तेरी आंखें दो खिले हुए कृष्ण कमल जैसी हैं
जिनके चारों ओर मेरा मन भवरे की तरह चक्कर काट रहा है।
काली स्याह है तेरी आंखें, यमुना दह की तरह,
कन्हैया बनकर मैं उनमें डूबू जन्म भर के लिए।
पलकों की लपक में चमकते नेत्रमणि
या काले रसभरे अंगूर की तरह हैं तेरी दोनों आंखें।
कृष्ण मेघ जैसी लगती है तेरी आंखें
पर मुझे उनकी बरसात प्रिय नहीं है।
तू सदैव हसती रह, कभी न हो दुःखी
मैं तेरे सुख के लिए निछावर कर दूंगा अपना जीवन।
कैसा शब्दजाल है—केवल शब्दों का इन्द्रजाल।

मेरी आंखों की बरसात देखनी नहीं थी शायद इसीलिए इन्द्रजीत ने मुझे धोखा देकर गौरी से विवाह किया। भाषा तो प्राण न्योछावर करने की किन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार में तो उसने मुझे प्राण निकालने जैसा दुख दिया। मेरा तो जीवन ही मरण सम बना दिया और बाद में गौरी को तो मार ही डाला।

क्या गौरी ने स्वयमेव तो मृत्यु स्वीकार नही की होगी ? नही-नही ! यह निर्बलता मेरे लिए ठीक नही ।

इन्द्रजीत को लगता होगा कि मैं और गौरी उसके जाल मे फसी मूर्ख और असहाय मक्खियाँ है पर मैं यह जाल तोडकर रहूगी । उसको दडित करूगी । इसीलिए तो मैं कोल्हापुर आयी हू ।

वास्तव मे गौरी का अपराध भी इन्द्रजीत से कम नही था । इन्द्रजीत से मेरे प्रेम की जानकारी हमारे घर मे अन्य किसी को नही थी, किन्तु गौरी को तो थी । उसने एक बार मुझे छेडकर मुझसे स्वीकार भी करा लिया था कि मैं इन्द्रजीत से प्रेम करती हू ।

हम दोनो बहनो मे गौरी स्वभाव से बडी धूर्त, स्वार्थी और निरकुश थी । सुन्दर और छोटी होने के कारण मा की अधिक लाडली थी । यो मा ने कभी हमम जान-बूझकर भेदभाव नही किया किन्तु अनजाने मे ही वह गौरी को अधिक लाड दुलार करती थी । इसीलिए तो गौरी सिर चढ गयी थी । मानने लगी थी कि वह मुझसे श्रेष्ठ है । मैं तो स्वभाव से ही सरल और सहिष्णु थी । गौरी कितना भी स्वार्थीपना दिखाती, किन्तु मैं उसे उसकी नादानी समझकर माफ कर देती ।

मेरी तथा गौरी की आयु मे एक वर्ष का ही तो अन्तर था । बाकी तो बराबर की ही लगती थी । मैं अपने कपडे स्वय धोकर, इस्त्री करके व्यवस्थित रखती—गौरी अव्यवस्थित रहती और जब भी मौका लगता, मेरे कपडे निकालकर पहन लेती । कई बार तो एन मौके पर मुझे कपडो के बिना तकलीफ होती । इस पर कभी-कभी हमारा झगडा भी होता, किन्तु अन्त मे मुझे ही चुप रहना पडता ।

गौरी के स्वभाव की एक विचित्रता और थी । हम दोनो कभी अपनी-अपनी पसन्द की वस्तु खरीदते पर बाद मे गौरी को मेरी वस्तु अधिक पसन्द आने लगती और खुद की पसन्द को भूल समझने लगती । जिद्दपूर्वक वस्तुओं की अदला-बदली कर लेती । मेरी किसी भी वस्तु का पूर्ण उपयोग उसने मुझे कभी नही करने दिया । गौरी सनकी स्वभाव की थी । उसकी पसन्द-नापसन्द क्षण-क्षण मे बदलती रहती थी ।

इन्द्रजीत का मुझ पर प्रेम होने के कारण स्वभावानुसार वह भी उस

ही पसन्द करने लग गयी थी। वह चाहने लगी थी कि इन्द्रजीत का प्रेम सुमित्रा के बजाय उसे ही प्राप्त हो। जो कुछ मेरा होता था, वह इतने दिनों तक तो मैंने गौरी को लेने दिया था पर इन्द्रजीत का प्रेम तो मेरा अकेली का ही था। गौरी के साथ उसे नहीं बाट सकती थी। गौरी की मूर्खता की ओर मैं दुर्लक्ष्य कर रही थी।

मैं और इन्द्रजीत चोरी-चोरी मिलते थे।

इन्द्रजीत ने एक दिन कहा था कि अपना प्रेम हर दिन चन्द्रकला की तरह बढ़ रहा है और जिस दिन अपना मिलन होगा वह पूर्णिमा का दिन ही होगा न? इसीलिए तो लग्न के पश्चात् 'मधुचन्द्र' का ही हम आनन्द लेते हैं।

"ए बाबा, अपने प्रेम को चन्द्रकोर की उपमा मत दो।"

"क्यों भाई? कितनी सुन्दर उपमा है?"

"नहीं, नहीं—मुझे पसन्द नहीं आयी। यह उपमा चन्द्रकला की तरह प्रेम बढ़ना, पूर्णिमा आना, यह तो ठीक है किन्तु पूर्णिमा का चन्द्र वैसा ही नहीं रहता—घटने लगता है और फिर अमावस्या आ जाती है। चन्द्रमा को ग्रहण भी तो लगता है।"

"अरे सुम्मी, उपमा को इतना कभी नहीं खींचते। मानव मन को आशावादी ही रहना चाहिए। वास्तविक चन्द्र क्षीण होता होगा, किन्तु प्रेम की पूर्णिमा सदैव प्रकाशमान रह सकती है। 'भावतरंग' में पढ़ा नहीं क्या—

तेरे जीवन में लहराये सदैव पूर्णिमा प्रीति की।

मेरे हृदयसागर सुख का ज्वार भरे।"

"जीतू, तू इंजीनियरिंग में गलती से गया। कला का छात्र होना था तुझे तो।"

कभी कभी शब्द फलते हैं। मैंने उस समय जो कहा था दुर्दैव से वही सही निकला। हमारे प्रेम को ग्रहण लग गया। पूर्णिमा की जगह स्थायी अमावस्या भाग्य में आयी।

योग ऐसा कि इन्द्रजीत से मेरी प्रथम प्रेम-भेंट पूर्णिमा को ही हुई थी और पूर्णिमा पर ही हमारा झगड़ा हुआ।

वह त्रिपुरी पूर्णिमा का दिन था। मा की एक पुरानी मनौती छुड़ाने घर के हम सब लोग सागली के पास हरिपुर मे सगमेश्वर के दर्शन के लिए जा रहे थे। मा ने इन्द्रजीत को साथ चलने के लिए आग्रहपूर्वक राजी कर लिया।

हमारी तैयारी पूरी हुई। पर गौरी को बुखार आ गया। मा सारा कार्यक्रम गौरी के लिए शायद रद्द कर देती, किन्तु देवता की मनौती के कारण गौरी को छोड़कर भी जाने का तय हो रहा, क्योकि हम शीघ्र ही कोल्हापुर छोड़कर स्थायी रूप से बम्बई जाने वाले थे। अण्णा ने वहां जज की सरकारी नौकरी स्वीकार कर ली थी। गौरी छोटे बच्चे की तरह रोयी भी, किन्तु कुछ अनिच्छा पर अधिक विवशता के अधीन मा गौरी को घर पर छोड़कर ही निकली। राधा मौसी को गौरी के पास छोड़ा।

गौरी के साथ न होने से मैं तो मन-ही-मन खुश थी। इन्द्रजीत के साथ अकेले-अकेले घूमने का पूरा अवसर मिलने वाला था न!

और हुआ भी ऐसा ही!

चादनी रात मे मैं और इन्द्रजीत नदी के किनारे घूमने निकले— उत्सव होने से एकान्त तो नही था पर फिर भी किनारे की एक शिला पर हमको बैठने की जगह मिल ही गयी। इन्द्रजीत ने मुझसे पूछा—

"तेरे अण्णा का बम्बई जाना निश्चित हो गया न?"

"हां, पन्द्रह दिन बाद पहले वे अकेले बम्बई जायेंगे। वहा रहने की जगह भी मिल गयी है, किन्तु हम सब थोड़े दिन बाद जायेंगे। जाने से पहले अपना कोल्हापुर का मकान भी बचना है। मा का तो कहना है कि एक-दो कमरे रखकर बाकी किराये पर उठा दो। देखें क्या तय होता है।"

मैंने उत्सुकता से पूछा, "कोल्हापुर के मुकाबले बम्बई बहुत बड़ा है न? मैं बचपन मे वहा गयी थी, उस समय की धुधली याद है।"

'सुमि, मैं तुझे बम्बई जाने नही दूगा।"

"अरे बाप रे, मैं अकेली कोल्हापुर मे कैसे रहूगी और रहने देगा कौन?"

"हम दोनो अभी के अभी शादी कर डालें।"

"अभी शादी, यह कैसे सम्भव है? अभी तो अपने को दो-तीन वर्ष

मन का

रखना ही पड़ेगा।"

"पर क्यों ?"

"जितू, कितना पागलपन-भरा प्रश्न है यह ?"

"अर्थात् तेरी राय में मैं पागल हूं। सुमि, तू अपने आपको बहुत ज्यादा होशियार मत समझ।"

"कितना गुस्सा करता है, रे! शायद मेरे जाने से तुझे विरह-वेदना होगी, इसकी कल्पना भी तुझे सह्य नहीं है। मैं तेरा मन समझती हूं। पर मुझे तो इस विरह में भी सुख लगता है। मैं भी तेरे समान ही मिलन की घड़ी की प्रतीक्षा कर रही हूं। पर तू जितना भावुक और स्वप्नालु है, उतनी ही मैं विचारशील एवं व्यावहारिक हूं। शादी के बाद केवल प्रेम पर जिन्दा नहीं रहा जा सकता। लग्न होते ही गृहस्थी आती है और गृहस्थी के साथ ही उत्तरदायित्व भी। बाल-बच्चे होने के साथ यह उत्तरदायित्व बढ़ता ही जाता है। श्याम काका तो चले ही गये। उन्होंने जो कुछ थोड़ा बहुत छोड़ा था वह सारा धन तूने वर्कशॉप में लगा दिया।"

"तेरी सलाह से ही मैंने वर्कशॉप में पैसा लगाया।"

"मुझे इसका शिकायत थोड़े ही है ? केवल वस्तुस्थिति बता रही हूं। स्वतंत्र व्यवसाय के लिए तूने जो साहस किया है, वह मुझे बहुत पसन्द है। किन्तु मेरा मानना केवल इतना ही है कि तेरी वर्तमान परिस्थिति गृहस्थ जीवन में प्रवेश के अनुकूल नहीं है। वर्तमान स्थिति में व्यवसाय और गृहस्थ की दोहरी जिम्मेदारी तेरे लिए भारी होगी। मनुष्य को प्रेम करना चाहिए, किन्तु प्रेम में अन्धा अथवा अव्यावहारिक बनना ठीक नहीं। एक बार काम जमने दे, आत्मविश्वास बढ़ने दे और चार पैसे इकट्ठे होने दे। फिर तू जिस समय कहेगा, उसी समय शादी कर लेंगे।"

"सुम्मी, तू मुझे छोड़कर दो-तीन वर्ष रह सकेगी ?"

"मुश्किल होगा, पर तो भी मन को समझाऊंगी।"

"मुझ पर तेरा प्रेम सच्चा है न ?"

"अभी भी मेरे प्रेम पर शंका करता है तू। जितू! पगले, मैं प्रेम तो क्या तेरी भक्ति करती हूं। तुझे मैं अपना सर्वस्व मानती हूं। मैं तेरे लिए कुछ भी करने को तैयार हूं।"

"पर सिर्फ शादी करने की तैयारी नही है।"

"अभी तुरत शादी करने की तैयारी नही है। तू भी अगर ठीक तरह से विचार करेगा तो समझ जायेगा कि अभी कुछ दिन रुकना अभीष्ट है। अच्छे भविष्य की कल्पना के साथ, मनुष्य को विपरीत परिस्थितिया के लिए भी तैयार रहना चाहिए। समझ तेरा व्यवसाय नही चला तो? वह चलेगा इसका मुझे विश्वास है, पर तो भी शत-प्रतिशत विश्वास नही किया जा सकता। इसीलिए कहती हू कि हम कुछ दिन रुकना चाहिए। इन्द्रजीत, तुझे अभी बताने वाली नही थी, फिर भी बताती हू। बम्बई जाते ही मैं नौकरी करूगी। हमारे अण्णा का मानना भी है कि गृहस्थ जीवन मे प्रवेश करने से पूर्व लडकियों को भी नौकरी करके ससार का अनुभव लेना चाहिए। एक स्थान स मेरा इण्टरव्यू का बुलावा भी आ गया है। इसके लिए मैं अण्णा के साथ ही बम्बई जा रही हू। यदि यह नौकरी मिल गयी तो मैं अपना सारा वेतन अलग ही रखने वाली हू और फिर हम साल-डेढ साल म ही विवाह कर सकेंगे। अपनी गृहस्थी की शुरुआत मे वह पैसा उपयोगी होगा। यो तो अण्णा मेरे कहने पर अभी विवाह कर देंगे, पर फिर लोग कहेंगे कि उनकी मदद से तेरा व्यवसाय चला। तेरे कर्तृत्व पर मेरा विश्वास है अन यह लाछन मै क्यो सहन करू?"

"बस कर, सुमित्रा! मेरे कर्तृत्व पर तेरा विश्वास कितना है, यह तो मैं समझ गया। तूने मुझसे पूछे बिना नौकरी के लिए प्रयत्न किय ही कैसे? तू बम्बई जायेगी! नौकरी करेगी! तेरे वेतन स ही मेरा प्रारम्भिक ससार चलेगा! सुमित्रा, मुझे यही सब विचित्र लगता है, तू क्या नहीं समझती?"

"तू ही नहीं समझ रहा! हमारे बीच तेरे-मेरे का भेदभाव है ही कहा! मेरे पैस की मदद लेना तुझे बुरा लगता है? अण्णा के पैसे की मदद ली, तो बुरा लगना और स्वाभाविक है।'

"सुम्मी बम्बई एक मोह-नगरी है। मुझे कैसा-कैसा लग रहा है, यह कहना भी मेरे लिए मुश्किल हो गया है।'

"तुझे कहना क्या है साफ बोल। मन म कोई दावावसाकर मत बैठ।'

"साफ ही बोलता हू। मुझे लगता है कि बम्बई जाकर, एक बार वहा

के माहौल की आदत लग जाने पर शायद तुझे कोल्हापुर रहना भी अच्छा नही लगेगा। वहा तू नौकरी करेगी और नौकरी के दौरान बम्बई के अनेक स्मार्ट और फशनेबुल पुरुषो का निकट सहवास तुझे मिलेगा। तेरे मन पर उनकी छाप पडेगी फिर तू अनजाने मे ही मेरी तुलना उनसे करने लगेगी। इस तुलना मे मैं गाँवडेल ही तो लगूगा। निरन्तर निकट के सहवास मे यदि कोई शहरी तरुण तुझे पसन्द आ गया, तो तू मुझे भूल भी जायेगी। ऐसा होता भी रहता है।"

"पुरुषो म ऐसी बात होती होगी।"

"इस नये युग मे स्त्रियो के लिए भी यह सही है।"

"जितू देख, तू छोटे बच्चा की तरह तर्क-वितर्क मत कर। एक ओर तो इस समय शादी करन की बात करता है और दूसरी ओर एक अबोध बच्चे जैसा व्यवहार कर रहा है। पहले मेच्योर पुरुष की तरह बोलना सीख।"

"देख लिया न! बम्बई जाने से पहले ही तेरे मन म क्या बुलावे उठने लगे और मैं गैर जवाबदार और बचकाना लगने लगा। तूने मुझे इम्मच्योर बताकर छुट्टी ले ली।"

"आज तेरा व्यवहार ऐसा ही है। तू सोच ही कैसे सका कि मैं किसी दूसरे पुरुष के आकर्षण मे पड जाऊगी। मुझ पर तेरा इतना भी विश्वास नही है तो मेरे प्रेम को ही धिक्कार है।"

"इसका क्या मतलब सुम्मी, मुझसे प्रेम करने का तुझे पश्चात्ताप हो रहा है क्या? जो मन मे हो, साफ बोल दे।"

"तुझसे तो बोलना ही मुश्किल है। एकदम पागल जैसी बात कर रहा है।"

"हा हा, मैं पागल हू। मूर्ख हू। पर मैं बहुत जिद्दी हू। अगर तूने बम्बई जाकर नौकरी की, तो मुझे पसन्द नही आयेगा। इस जन्म मे तुझसे फिर कभी नही बोलूगा।"

बात स बात बढने पर उस दिन अकारण ही हमारा झगडा हो गया। हमने एक दूसरे स बोलना छोड दिया। हरिपुर म आने के बाद चार-पाच दिन तक हम एक-दूसरे से मिले तक नही।

इन्द्रजीत से मेरा यह प्रथम झगड़ा था। मुझे मन ही-मन बुरा लग रहा था। हमे एक-दूसरे से इतना चुभता हुआ नही बोलना था।

कई बार मन मे आया कि स्वय इन्द्रजीत के पास जाकर इस झगडे को समाप्त करू। मुझे विश्वास होता था कि यदि मैं प्रेमपूर्वक मीठे शब्दो मे अपनी बात कहूगी, तो इन्द्रजीत समझ जायेगा। पर अपने से जाकर उससे बोलने मे मेरा स्वाभिमान मुझे रोकता था। मुझेलगता था कि सारी गलती इन्द्रजीत की ही है। उसी ने पागल की तरह जिद्द की है—बचपना किया है। मैंने जो कुछ करने का निश्चय किया था, वह व्यावहारिक था।

कोल्हापुर से बम्बई जाने के बाद बम्बई के स्मार्ट तरुण पुरुष देखकर इन्द्रजीत मुझे गावडेल लगेगा, इसकी कल्पना भी हास्यास्पद थी। वास्तव मे उसने मेरे प्रेम पर शका करके एक प्रकार से मेरा अपमान ही किया था। और अब झगडा दूर करने का प्रयास भी उसी को करना चाहिए था। मैं उत्सुक थी, पर इन्द्रजीत अकड मे था।

५

सप्तमेश्वर के दर्शन करके आने के बाद से पाच दिन तक इन्द्रजीत हमारे घर आया भी नही था। घर के सभी लोग बम्बई जाने की तैयारी मे इतने व्यस्त थे कि मेरे सिवाय किसी का ध्यान इस ओर गया तक नही।

एक दिन मैं और गौरी अम्बाबाई के मन्दिर जा रहे थे कि रास्ते मे इन्द्रजीत मिला। उसको देखकर गौरी रुकी अत मुझे भी रुकना पडा। पर वह मुझसे एक शब्द भी न बोलकर गौरी से दो-चार वाक्य बोलता हुआ जल्दी का बहाना करके निकल गया। उसकी यह अशिष्टता देखकर मुझे और भी गुस्सा आया। मैंने निश्चय कर लिया कि खुद इन्द्रजीत से नही बोलूगी।

मेरा और इन्द्रजीत का अबोला देखकर गौरी समझ गयी कि हम दोनों मे कुछ खटपट है। उसने मुझसे पूछा।

"सुमित्रा, लगता है तेरा और इन्द्रजीत का कोई झगडा हो गया है। वह तुझसे नही बोलता है। हरिपुर से आने के बाद एक बार भी वह अपने घर

नहीं आया। तू भी उसके घर नहीं गयी। हरिपुर से ही कोई झगड़ा हुआ है। क्या बात है ?"

"झगड़ा कैसा, री ? फालतू का बचपना कर रहा है, जैसे कोई समझ ही नहीं हो।"

"सुमित्रा, तू बहुत अभिमानी है। यह अच्छा नहीं। इन्द्रजीत जैसे पुरुष से ऐसा व्यवहार करने पर तुझे पछताना पड़ेगा।"

"पुरुष ? इन्द्रजीत और पुरुष ? छी-छी !" मैंने तुच्छता के साथ कहा, "इतना बड़ा हो गया तो भी छोटे बच्चों की तरह बात करता है, उसको क्या पुरुष कहेंगे ?"

मैं बहुत गुस्से में थी। गौरी ने एक बार मेरी ओर ध्यान से देखा, फिर कंधे उचकाकर चुप हो गयी जैसे कि स्वयं के विचारों में ही डूब गयी हो।

उस दिन शाम को मां ने किसी काम के लिए गौरी को आवाज़ दी। मैंने गौरी को घर-भर में ढूंढा। वह कहीं नहीं थी। पता नहीं कब वे चली गयी थी। वह रात को घर आयी, उस समय पौने नौ बजे थे। मां कुछ सामान जमाने के काम में लगी थीं, अतः उसने कोई ध्यान नहीं दिया। गौरी बाहर से आकर चुपचाप सीढ़ियां चढ़कर ऊपर जा रही थी और मैं नीचे आ रही थी। गौरी को देखकर मैं ऊपर की सीढ़ी पर ही स्तंभित हो गयी। गौरी की मुसमुसाई साड़ी, बिखरे हुए बाल और ललाट पर फैला हुआ कुंकुम देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मुझे टालकर वह अपने कमरे की ओर जा रही थी किन्तु मैंने रोककर उससे पूछा—

'गौरी, क्या यह घर आने का समय है ? कितने बजे हैं ?" उसका हाथ पकड़कर मैंने उसी की घड़ी उसे दिखायी और कहा, "नौ बज रहे हैं। इतनी देर क्यों ? अण्णा कभी से भोजन के लिए तेरी राह देख रहे थे। तू कहां गयी थी ? और तेरा यह हाल कैसा हो रहा है ?"

"तू मुझसे पूछनेवाली कौन ? छोड़ मुझे !" वह मेरे हाथ को झटकारते हुए बोली।

"ऐसा ! तो अण्णा ही तुझसे पूछेंगे। अण्णा ! ओ अण्णा...!"

"सुमित्रा, चुप बैठ। सुली के साथ बैडमिंटन खेलते हुए एक दिन जरा-

सी देर हो गयी, तो क्या बिगड़ गया ?"

"कौन मुली ? मुली घोरपड़े !"

"कोल्हापुर में मुली नाम की अपनी एक ही मित्र है।" वह रोब के साथ बोली, किन्तु बोलते समय वह मेरी नजर टाल रही थी।

मुझे निश्चयपूर्वक लग रहा था कि गौरी झूठ बोल रही है। मुझे कुछ संदेह था, लेकिन कैसा—यह समझ में नहीं आ रहा था। पर मैंने उसमें ज्यादा छेड़-छाड़ नहीं की। उस दिन उसका व्यवहार विचित्र ही था। हमेशा तो भोजन के समय उसका खाना और बोलना एक साथ चलता रहता था, किन्तु आज वह बिलकुल चुप थी। वास्तव में तो बैडमिण्टन खेलने के बाद ज्यादा भूख लगनी चाहिए, किन्तु आज वह हाथ जूठे करते ही उठ गई और नींद का बहाना करके एकदम ऊपर ही चली गयी।

मैं बहुत देर तक नीचे ही थी और सामान ठीक करने में माँ की मदद कर रही थी। लगभग डेढ़ घंटे बाद मैं ऊपर गयी। मुझे एक मासिक पत्रिका चाहिए थी, उसे लेने मैं गौरी के कमरे में गयी। गौरी नींद में होगी, अतः धीरे-धीरे ही मैंने दरवाजा खोला। लाईट जल रही थी। किन्तु गौरी पूरी तरह जग रही थी। मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—

"अरे, यह क्या, तू अब भी जग रही है ? नीचे तो तेरी नींद वश में नहीं थी।"

उसने मेरी ओर पीठ करके कहा, "तू मेरे कमरे में आ गयी, इसीलिए मेरी नींद टूट गयी। जा न यहाँ से, मुझे सोने दे।"

मुझे इस समय भी लगा कि वह झूठ बोल रही है। मैं टेबुल पर रखी मासिक पत्रिका उठाकर बाहर निकल आयी।

गौरी यों भी मूडी स्वभाव की थी। इसलिए मैंने उसके व्यवहार पर अधिक ध्यान नहीं दिया।

एक दिन योगायोग से गौरी की मित्र मुली घोरपड़े मुझे रास्ते में मिल गयी। मैंने उससे सहज ही पूछा, 'दो तीन दिन पूर्व तू और गौरी इतनी देर तक बैडमिण्टन खेलते रहे ?"

'बैडमिण्टन ? कब ? हम दोनों तो आठ दिन से आपस में नहीं मिलीं।"

मुझे खूब अजीब लगा, पर मूली के सामने मैं चुप ही रही।

गौरी से ही बात करने का मैंने तय किया। पर वह अवसर ही नहीं मिला। गौरी तो दूसरे ही दिन घर से भाग गयी थी।

दिन-भर उसका कहीं पता नहीं लगा। रात को देर से समाचार मिला कि गौरी और इन्द्रजीत ने गुप-चुप नरसोबा की वाडी में जाकर विवाह कर लिया है।

इस अनपेक्षित बात का मेरे मन पर बडा गहरा सदमा लगा। यों माँ और अण्णा को भी धक्का लगा था, किन्तु गौरी और इन्द्रजीत के विवाह का समाचार मेरे लिए तो ज्वालामुखी के लावे की तरह था।

मेरी छोटी बहन ही मेरी दुश्मन हो गयी। जो कुछ भी मेरे पास देने लायक था, मैंने सदैव ही गौरी को दिया, किन्तु जो नहीं दिया जा सकता था वह सर्वस्व भी उसने लूट लिया।

गौरी की अपेक्षा इन्द्रजीत के व्यवहार से मुझे अधिक दुख था। गौरी सुन्दर थी, फिर भी इन्द्रजीत ने मेरे साथ प्रेम किया, उसने मेरी आँखों को कृष्ण कमल की उपमा दी और स्वयं को भवरे की।

हाँ, वह भवरा ही तो निकला—कभी इस फूल पर कभी उस फूल पर। बेईमान, नादान, चचल भवरा!

गौरी ने भवरे से विवाह किया। कल शायद वह उसे भी धोखा दे।

क्यो, पगली सुमित्रा! दुख करती है? तेरा भाग्य ही समझ कि तू बच गयी। तेरा विवाह उससे नहीं हुआ।

पर सुमित्रा जितनी पागल थी, उससे अधिक पागल उसका मन था। इन्द्रजीत के विश्वासघात से वह घायल हो गया था। पानी से बाहर निकली मछली की तरह वह तडप रहा था।

'भावतरंग' की ही एक और कविता—

"तेरे बिन यह जीवन जैसे जल बिन मीन
पख बिना पक्षी चन्द्र बिना आकाश"

मेरा मन तडप रहा था, पर मैंने किसी को इसका आभास नहीं लगने दिया। माँ और अण्णा को भी नहीं। इन्द्रजीत से बचपन की दोस्ती प्रेम में बदल गयी। यह सोचकर उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ। माँ ने अण्णा से

यही कहा—

"छोकरी ने घर से भागकर शादी क्यों की ? अगर वह अपने मन की बात बताती, तो हम ही उसकी शादी इन्द्रजीत से कर देते। पर बड़ी बहन की शादी से पहले उसकी शादी कोई नहीं करेगा, इसी कल्पना से गौरी ने भागकर विवाह किया। तुम्हें क्या लगता है ?"

"मैं भी ऐसा ही समझता हू। इसके अतिरिक्त यह भी बात हो सकती है कि बम्बई जाकर इन्द्रजीत से दूर रहना पड़ेगा, इस डर से भी उसने जल्दी शादी कर ली।" अण्णा बोले।

मा ने कहा, "गौरी की शादी धूमधाम से करने की कितनी उमग थी पर छोकरी ने सब कुछ गड़बड़ कर दिया।"

मा और अण्णा की बातचीत सुनकर मैंने निश्वास छोड़ा। यही अच्छा था कि उन्हे पता नहीं चला कि गौरी ने मेरी पीठ पर कैसा घाव किया है।

गौरी का विवाह सारे गाव की चर्चा का विषय बन गया। मुझे किसी से बोलना अच्छा नहीं लगता था। घर से बाहर निकलना भी अच्छा नहीं लगता था। आत्महत्या का पागलपन-भरा विचार भी मेरे मन मे आया, पर मैंने उसे उत्तेजन नहीं दिया।

मन को कठोर करके मैंने अपना सारा व्यवहार पूर्ववत् ही जारी रखा। गौरी के भागकर शादी करने के बारे मे कई लोगों ने मुझे छेड़ा, किन्तु मैंने हसकर ही उत्तर दिया। गौरी की इस शादी का मेरे पर कोई परिणाम न देखकर लोगों ने अपने-आप ही इस चर्चा को छोड दिया।

एकान्त के अतिरिक्त अन्य कहीं मैंने अपने दुःख को प्रकट नहीं होने दिया। किसी ने मेरी आख मे आसू नहीं देखा। मेरे इस मनोनिग्रह की शक्ति का आज भी मुझे गर्व है।

हीराबाई बागले ने मुझे अवश्य परेशान किया। उन्होंने मुझे इन्द्रजीत के आलिगन में देखा था, पर मैंने उन्हें भी कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। हीराबाई से मैंने यही कहा कि उस दिन मेरी आख मे कुछ गिर गया था और इसलिए इन्द्रजीत पास खड़ा होकर आख मे फूक मार रहा था। मैंने उन्हे साफ बताया कि इन्द्रजीत और गौरी के विवाह से मुझे कोई दुःख नहीं है। उन्हें विश्वास हुआ हो या न हुआ हो, पर अन्त मे चुप ही

होना पडा।

शादी के बाद गौरी घर से निकल गयी थी, पर मा ने उसको वापस बुलवाया। सबने गौरी को क्षमा कर दिया। पर मैं उसे क्षमा नही कर सकी। मैं उससे कुछ बोली भी नही।

गौरी को ही कुछ अटपटा लग रहा था। उसका मन उसे खा रहा था। मेरा तो सिर अभिमान से उठा हुआ था। गौरी को ही मेरे सामने आने मे शरम लगती थी।

पर वह तो प्रारम्भ मे ही पक्की स्वार्थी और धूर्त थी। खुशामद करते हुए मुझसे बोली—

"सुमित्रा, तू मुझसे बहुत नाराज है, मुझे पता है।" मैंने कोई उत्तर नही दिया। वही बोली—

"देखा जाये तो तेरे नाराज होने का कोई कारण नही है।"

तो भी मैं मौन ही रही। मेरे व्यवहार से वह परेशान थी।

मैं गुस्सा भी नही दिखा रही थी, प्रेम भी प्रकट नही कर रही थी। वह चुलबुल करते हुए मुझसे बोली—

"मैंने इन्द्रजीत को तेरे पास से छीना नही है, तूने स्वयं उसे दूर फेंक दिया था। तूने खुद ने ही कहा था कि इन्द्रजीत पुरुष ही नही है। यह उसका अपमान था। खैर! इन्द्रजीत तेरे लिए बेकार था, तो भी मुझे चाहिए था। तूने जो ठुकराया, वह मैंने स्वीकार किया इसमें मेरी क्या गलती।"

मैंने स्थिर नजर से उसकी ओर देखा। उसने मेरे से आख मिलाने का निष्फल प्रयास किया। उसकी पलकें झुक गयी।

मैं गौरी से एक शब्द भी बोलना नही चाहती थी। मैं गुस्से मे इन्द्रजीत के लिए जो कुछ बोल गई थी उसका उसने गलत फायदा उठाया था, पर यह तो उसका स्वभाव ही था।

वास्तव मे मुझसे विश्वासघात तो इन्द्रजीत ने किया था।

मा ने इन्द्रजीत को भी घर बुलाया। विवश होकर वह आया अवश्य, किन्तु बहुत बेचैन एवं व्याकुल दिखाई दे रहा था। मुझसे अकेली से बात करने का वह अवसर ढूढ रहा था। शायद विश्वासघात की सफाई देना

चाहता होगा, पर मैंने उसे मौका ही नहीं दिया।

अण्णा ने हमारा कोल्हापुर का घर गौरी को विवाहोपहार के रूप में दे दिया। बाद में अण्णा अकेले बम्बई गये। मैं इण्टरव्यू के लिए बम्बई जाने वाली थी, पर कम-से कम उस समय मैंने यह बात टाल दी। मैं और मां कुछ दिन बाद बम्बई पहुंचे। वहां मुझे दूसरी नौकरी मिल गयी।

अपने कोल्हापुर के घर में मैं अकेली बैठी थी तथा पुरानी यादें मेरे दिमाग में घूम रही थीं।

मैंने अलमारी जोरों से बन्द की और वहां से दूर हट गयी। जिस 'भावतरंग' ने मुझे इतना मानसिक दुःख दिया, उसकी जरूरत मुझे क्यों हो रही थी? मुझे स्वयं पर ही गुस्सा आया।

मैंने बटन दबाकर पंखा बन्द किया। मन में विचार आया—यदि कोई बटन दबाकर विचार-चक्र बन्द करना भी सम्भव होता, तो कितना अच्छा रहता।

६

इन्द्रजीत के घर आते ही, भूतकाल में भटक रहा मन वर्तमान की धरती पर आ गया। राधा मौसी द्वारा तैयार भोजन-सामग्री मैंने गैस के चूल्हे पर गरम की। इन्द्रजीत ने टेबुल पर प्लेटें लगायीं। भोजन करते समय बीच-बीच में वह साधारण बातें बोलता रहा। कोई गम्भीर अथवा अप्रिय प्रसंग बातचीत में नहीं आया। मुझे अच्छा लगा।

भोजन के बाद मैंने कहा, "अब मैं जरा दोपहर की नींद ले लेती हूं।"

"अच्छा, इतनी देर क्या किया?"

"भोजन से पहले क्या सोना। मैं अलमारी की पुस्तकें यों ही उलट पुलट कर रही थी।"

वास्तव में तो मुझे उससे अधिक बातचीत का प्रसंग टालना था। इसीलिए नींद का नाम लेकर अपने कमरे में चली गयी। इन्द्रजीत भी अपने कमरे में चला गया होगा।

मैं पलग पर लेटी थी, किन्तु नीद नाम को भी नही ग्रा रही थी। मन का पछी एक बार फिर से मूलवाल की ओर उडान भरने लगा था।

मैं बम्बई चली गयी थी—पुन कोल्हापुर कभी न ग्राने के निश्चय से। गौरी एव इन्द्रजीत को दुबारा न देखने का इरादा करके बम्बई जाते ही मेरी नौकरी लग गयी थी, अत बेकार का समय भी मेरे पास न था, फिर भी कई बार मैं एकाएक बेचैन हो उठती। कालान्तर मे मन का घाव चाहे न भरा हो, किन्तु उस पर विवेक का मलहम लग चुका था। इन्द्रजीत के प्रेम—इन्द्रजीत द्वारा प्रेम-भग की व्यथा भूलकर मैं जीना सीख चुकी थी। नौकरी करते हुए अनेक पुरुषो से मेरा सम्पर्क ग्राया। उनमे दो-तीन तो बहुत ही सुन्दर, फैशनेबुल ग्रौर स्मार्ट थ, पर इन्द्रजीत की छाया के अनुरूप उनमे स एक भी मुझे आकर्षक नही लगा।

विवाहोपरान्त प्रथम छह महीने मे गौरी केवल एक बार ही तीन सप्ताह के लिए बम्बई ग्रायी। मा ने बहुत स्नेहोद्गार प्रकट किये। मैंने उससे ग्रधिक रूखा व्यवहार नही किया, तो साथ मे प्रेम भी प्रदर्शित नही किया। मा की इच्छा थी कि मैं ग्राठ दिन की छुट्टी लेकर गौरी को बम्बई की सैर कराऊ, पर मैं छुट्टी न मिलने का बहाना करके टाल गयी।

गौरी को देखकर मेरे मन मे ग्राश्चर्य होता था।

लगता नही था कि यह विवाह उसे रास ग्राया है। छह महीने मे ही वह बिलकुल सूख गयी थी। उसकी चित्तवृत्ति मे भी बदलाव ग्राया था। वह मूक ग्रौर गम्भीर बन गयी थी।

मा को तो यही लगता था कि गौरी पक्की गृहिणी बन गयी है, इसीलिए यह परिवर्तन है। विवाह से पूर्व तो वह एकदम ग्रल्हड थी। एसी लडकियो पर घर-ससार का बोझ पडते ही थोडा भारी लगता है।

गौरी सुगृहिणी बने ग्रथवा ग्रल्हड रहे—मेरे लिए तो दोनो बातें समान थी। उसके बारे मे मुझे ग्रब लेशमात्र भी रुचि नही थी। ग्रभी भी मैंने प्रेम ग्रथवा रागद्वेष-शून्य व्यवहार ही ग्रपनाया था। उसे भी मुझसे बोलते समय ऊपरी प्रेम दिखाना ही पडता था। इन्द्रजीत के बारे मे एक शब्द भी मैं उससे नही बोली ग्रौर न ही उसे इन्द्रजीत का उल्लेख करने का ग्रवसर दिया। तीन सप्ताह बाद वह कोल्हापुर गयी, पर ग्राश्चर्य यह

था कि इन्द्रजीत के पास जाने के बारे में वह स्वयं उत्सुक दिखायी नहीं दे रही थी। उस समय अण्णा और मा एक यात्रा कम्पनी से दक्षिण की यात्रा हेतु जाने वाले न होते, तो शायद वह अभी कुछ दिन और पीहर रहती। पर घर पर मैं, हमारा ड्राइवर-कम-सेवक तथा भोजन बनाने वाली एक दाई—ये तीन ही रहे, इसलिए गौरी को वापस ससुराल जाना ही पड़ा।

तीन-चार माह बाद कोल्हापुर से उसका पत्र आया कि उसके दिन चढ़ गये हैं और उसे बहुत तकलीफ होती है। गौरी मा की लाडली थी ही, मा से नहीं रहा गया। वह तुरन्त कोल्हापुर गयी।

पन्द्रह-बीस दिन बाद लौटकर उसने बताया, "गौरी को गर्भ की अधिक तकलीफ नहीं। घर-संसार के कार्य की जिम्मेदारी भी अब उस पर विशेष नहीं। राधा मौसी घर का सारा काम देखती है। गौरी को तो अभी भोजन बनाना भी नहीं आता। घर की ओर तो उसका ध्यान ही नहीं है। लगता ही नहीं कि उसने और इन्द्रजीत ने प्रेम विवाह किया होगा। मैं वहां थी, उन दिनों इन्द्रजीत दिन-दिन-भर घर से बाहर रहता था। विवाह से पूर्व उसका स्वभाव कितना आनंदी और उत्साही था। और अब तो वह भी भयङ्कर सनकी, चिड़चिड़ा और घुन्ना बन गया है। मैंने गौरी से कई बार पूछा भी कि तुम दोनों का व्यवहार ऐसा कैसा है, पर वह कुछ बताती ही नहीं।

"मैंने राधा मौसी से भी पूछा कि ये दोनों पति-पत्नी इस प्रकार कैसे रहते हैं? उन्होंने भी कहा कि कारण का कुछ पता ही नहीं चलता। यों तो दोनों कभी लड़ते नहीं, पर उन्होंने कभी भी दोनों को पति-पत्नी की तरह प्रेम से बोलते, घूमने जाते, नाटक-सिनेमा जाते नहीं देखा। इन्द्रजीत हमेशा कारखाने में ही रहता है। इन दिनों तो उसे खूब पीने की आदत लग गयी है। घर पर भी सामने पत्नी की जगह बोतल होती है। एक ही बात अच्छी है कि इन्द्रजीत का धन्धा बहुत अच्छा जम गया है। मुझे लगता है कि पीने की बात को लेकर ही पति पत्नी में मनमुटाव है। गौरी शायद इसीलिए मन में कुढ़ती है और दुबली होती जा रही है।"

मा की बात सुनकर मेरा आश्चर्य दुगुना हो गया। पर अन्दर ही-अन्दर कुछ अच्छा लगा।

किसी से विश्वासघात की नींव पर चुनी गयी संसार-सुख की इमारत

किस प्रकार टिक सकती है।

वास्तव मे तो मैने कभी उनके अमगल की बात ही नही सोची थी, पर वे तड़प रहे थे, दु खी थे। यह तो सही था। कही मेरी तड़पन का अभिशाप ही तो नही था उनके लिए।

इन्द्रजीत और गौरी मे अपनत्व नही था।

भगवान अपराधियो को सजा देता ही है।

बुरे कर्मों का फल बुरा ही मिलता है।

गौरी का गृहस्थ जीवन देखकर मा को चिंता थी, तो भी उसे आशा थी कि गौरी के बच्चा होने पर पति पत्नी मे पुन प्रेम निर्माण होगा। मा ने इन्द्रजीत से कहा था कि गौरी का प्रथम प्रसव होगा, इसलिए सातवा महीना लगते ही वह स्वय उसे बम्बई पहुचा दे, किन्तु इन्द्रजीत हमारे घर आना टाल रहा था। अण्णा को उसने पत्र लिखा कि वर्कशॉप का काम बहुत बढ गया है, अत उसका बम्बई आना सभव नही है।

मा ने अण्णा से कहा था कि बम्बई आते ही मेरे विवाह के लिए भी दौड धूप शुरू कर देना है पर मैं तैयार नही थी। अण्णा भी इस पक्ष मे थे कि अभी साल-दो साल देर की जाए, तो भी हर्ज नही।

गौरी के बच्चा होने वाला है। इसी बात को लेकर मा ने फिर से मेरे विवाह का प्रसग छेड़ा। मैंने कहा, "गौरी का प्रसव हो जाने दे, फिर देखेंगे।" विषय आगे नही बढा।

सातवा महीना लगने पर गौरी को लाने के लिए मा कोल्हापुर जाने की तैयारी कर रही थी। इसी बीच इन्द्रजीत का तार आया कि गौरी के समय से पूर्व ही प्रसव हो गया। उसके लड़का हुआ था, किन्तु वह जीया नही।

खबर पाते ही मा दौडती-भागती कोल्हापुर पहुची—गौरी को सभालने के लिए—उसे सान्त्वना बधाने के लिए। गौरी मेरे लिए घोर अपराधी थी, किन्तु उसका बच्चा मर जाने की बात सुनकर मुझे भी दु ख हुआ।

मा लगभग दो महीने कोल्हापुर मे गौरी के पास रही। बच्चा मरने से गौरी को गहरा सदमा लगा था। मा ने वापस आने के बाद मुझे और अण्णा को बताया कि गौरी की गृहस्थी मे सुख का लेश मात्र भी नही है।

"लडकी न जाने क्यो मन-ही-मन घुट रही है ? पूछने पर कुछ नही बताती। इन्द्रजीत तो और अधिक विचित्र व्यवहार करने लगा है। पहले तो वह ऐसा बिलकुल नही था। दोनो ने ही कैसा तो प्रेम किया, घर से भागकर कैसे शादी की और अब दोनो को ही न जाने क्या हो गया है ? कुछ पता नही लगता। मेरे जी को तो भयकर चिन्ता खाये जा रही है।"

मा घर छोडकर गौरी के पास रहती भी कितने दिन ? विवश होकर ही वह बम्बई वापस आयी थी। वह गौरी को विश्राति के लिए बम्बई लाना चाहती थी, पर अकाल-प्रसव से उत्पन्न कमजोरी के कारण डॉ० प्रधान काका ने उसे यात्रा की अनुमति नही दी।

डॉ० प्रधान कोल्हापुर मे श्याम काका के मित्र थे। श्याम काका क्रिमिनल प्रैक्टिस करते थे। उस समय डॉ० प्रधान सरकारी मामलो मे डॉक्टर के नाते पेश होते थे। खून अथवा सन्देहपूर्ण मृत्यु के सारे मामलो मे उन्हे शव की चीर-फाड करके मृत्यु का सही कारण ढूढना होता था तथा सरकार की ओर से कोर्ट मे गवाही देना पडती थी। कोर्ट मे श्याम काका और प्रधान काका मे जोरदार झडपें होती रहती थीं, किन्तु कोर्ट के बाहर दोनो गहरे मित्र थे। इन्द्रजीत के कारण ही हम डॉ० प्रधान को प्रधान काका कहने लगे थे। इसी तरह पब्लिक प्रोसिक्यूटर सालवेकर को हम सालवेकर काका कहते थे। सालवेकर और श्याम काका कोर्ट मे प्रतिद्वन्द्वी तथा बाहर अन्तरग मित्र थे। इन तीनो को पीने का थोडा बहुत शौक था। इन तीनो की खाने-पीने की बैठकें जमती। कभी-कभी हमारे अण्णा भी इसमे शामिल होकर चौकडी बना देते। अब श्याम काका नही थे और अण्णा ने कोल्हापुर छोड दिया था।

मा के कोल्हापुर से वापस आने के कुछ दिन बाद ही मुझे अकस्मात गौरी का पत्र मिला। यह पत्र उसने आफिस के पते पर भेजा था। गौरी ने लिखा था—

प्रिय सुमित्रा

आफिस के पते पर मेरा पत्र पाकर तुझे आश्चर्य होगा। घर के पते पर पत्र भेजती, तो मा और अण्णा को पता चल जाता। तेरे व मेरे जीवन में कुछ ऐसी बातें हैं जो सिर्फ हम दोनो को पता हैं। इसीलिए यह पत्र आफिस

के पते पर लिखा है।

सुमित्रा, मैंने तेरे प्रति घोर अपराध किया है। मैं तुझसे कुछ मागने अथवा अपेक्षा करने लायक बिलकुल भी नही हू। मैं अस्वीकार नही करती कि मैंने तुझसे भारी स्वार्थपूर्ण व्यवहार किया। तेरा सुख मैंने छीन लिया। तरुणावस्था आते-आते लडकियो मे जब प्रेम का स्फुरण होने लगता है, शायद उसी समय से मैं इन्द्रजीत से प्रेम करने लगी थी। उस समय मुझे विश्वास था कि इन्द्रजीत का प्रेम मुझे सहज ही प्राप्त हो जायेगा। बाद में मेरे ध्यान मे आया कि तू भी इन्द्रजीत से प्रेम करती है। छेडछाड करने पर तूने स्वीकार भी किया। पहले तो मुझे हसी आयी, क्योकि मैं स्वय को तुझसे कही अधिक सुन्दर और आकर्षक मानती थी। मुझे भरोसा था कि तू मेरे सामने नही टिक पायेगी। मा तो हमेशा कहती भी थी—हमारी गौरी को तो कोई भी हसते-हसते ले जायेगा। गौरी की शादी के लिए दौड-धूप नही करनी पडेगी। मा की इन बातो से मुझे घमड भी हो गया था।

पर बाद मे जब पता चला कि इन्द्रजीत मुझे नही, तुझे प्यार करता है, उसी समय से मैं तुझसे जलने लगी। तुम्हारी मित्रता समाप्त करने तथा इन्द्रजीत का आकर्षण अपने प्रति बनाने के लिए मैंने छिपकर कितने प्रयत्न किये, इसकी जानकारी केवल मुझे ही है। पर मेरे प्रयास व्यर्थ जा रहे थे। मुझे अपनी हार सहन नही हो रही थी। मैं अन्दर-ही-अन्दर जलती जा रही थी। ऊपर से किसी को पता नही लगने दिया।

हरिपुर मे तेरे और इन्द्रजीत के बीच क्या झगडा हुआ, मुझे आजतक पता नही है। पर यह समझ गयी कि झगडा हुआ है और मैंने अवसर का लाभ उठाया। विवाह करने के लिए मैंने इन्द्रजीत का मन मोडा। उसकी हा से मुझे असीम आनन्द हुआ। उसको अधिक सोचने-विचारने का अवसर न देते हुए घर से भागकर विवाह करने हेतु मैंने उसे बाध्य किया।

विवाह करके मुझे सौभाग्य के स्थान पर दुर्भाग्य मिला।

सुमित्रा, इन्द्रजीत मेरा हो गया। फिर भी मैं सुखी नही हुई। तुझसे कैसे और किन शब्दो मे कहू। पत्र में यह बात लिखना सभव नही। प्रत्यक्ष ही तेरे सामने कह सकती हू। इससे मुझे भी समाधान मिलेगा।

मेरा लडका मर जाने के बाद तो मैं घोर निराश हो गयी हू। सुमित्रा,

स्वय को सुन्दर और श्रेष्ठ समझने वाली वह मूर्ख, अल्हड और स्वार्थी गौरी अब निश्शेष हो चुकी है। मेरी अवस्था तो रस चूसे हुए गन्ने की तरह हो गयी है।

दीदी, मेरी दीदी! तेरी छोटी बहन को तुझसे बहुत सारी बातें करनी हैं। मैं अब अधिक दिन नही जीयूगी, मुझे मन मे डर लग रहा है। इस तरुणावस्था मे मरण किसी को पसन्द आयेगा क्या? मैं नही समझ पा रही कि मेरे मन मे मृत्यु के विचार क्यों उठ रहे हैं? दीदी, तू मेरी बडी बहन है—फिर भी मैंने कभी तुझे दीदी नही कहा। हमेशा सुमित्रा ही कहा। कभी तुझे आदर नही दिया, पर आज तेरी छोटी बहन पागल बहन तेरे आगे झोली पसारती है। तुझसे दया की भीख मागती है। मैं अन्तर्मन से निराश हो गयी हू, टर गयी हू। मेरे लिए एक बार कोल्हापुर आयेगी क्या? जल्दी आ। मुझे एक बार तुझसे क्षमा मागनी है। तू मुझे क्षमा कर सकेगी, तो ही परमेश्वर मुझे क्षमा करेगा।

दीदी, मैं बीमार हू।

मुझे तेरे सहारे की अतीव आवश्यकता है।

आयेगी ना इस पागल बहन के लिए?

चातक की तरह राह जोहती
तेरी छोटी बहन
गौरी

गौरी का पत्र पढकर मेरा जी भर आया।

मुझे स्वय अनुभव हुआ कि मैं अन्दर-ही-अन्दर उससे अभी भी प्यार करती हू।

मैंने मन मे विचार किया।

अविलब कोल्हापुर जाने का मैंने निर्णय लिया।

७

आफिस से मैं घर आयी। मा से कहा—

"मा, मैं चार दिन के लिए गौरी के पास कोल्हापुर जाऊं क्या ?"

मा के चेहरे पर आश्चर्य दिखाई दिया। अपनी बातों का खुलासा करते हुए मैंने कहा—

"तू कोल्हापुर से वापस आयी, उस समय तक गौरी स्वस्थ नहीं हुई थी। तेरा वहा अधिक दिन रहना सम्भव नहीं था और कमजोरी के कारण न ही तू उसे बम्बई ला सकी। तू उसके लिए लगातार चिन्तित रहती है। इसीलिए मेरे मन में आया कि एक बार जाकर गौरी को देख आऊं।"

मेरी बात सुनकर मा की आखें भर आयी। आचल से आसू पोंछते हुए उसने कहा—

"गौरी के लिए मेरे प्राण कितने व्याकुल हैं, इसका मुझे ही पता है। तू उसे देखकर आयगी, तो मुझे बहुत सन्तोष होगा। पर तेरा आफिस... छुट्टी..."

"इस समय मुझे छुट्टी आसानी से मिल सकेगी। इसीलिए तो मेरे मन में कोल्हापुर जाने का विचार आया।"

"हा, ठीक है। छुट्टी मिलती हो, तो जरूर जा। यदि डॉ० प्रधान यात्रा की इजाजत दे दें, तो गौरी को तू अपने साथ ही यहा ले आना। पर तू कोल्हापुर किसके साथ जायगी ? अकेली ?"

"साथ की क्या आवश्यकता है ! मैं छोटी बच्ची नहीं हू। रेलवे ने स्त्रियों के लिए अलग डिब्बे रखे हैं, फिर चिन्ता क्यों ?"

मा को इस बात का बडा सन्तोष था कि मैं स्वय गौरी के पास जा रही थी। मा तो यह समझती थी कि गौरी ने मुझसे पहले शादी कर ली, इसलिए मैं उससे नाराज हू। मैं उससे ईर्ष्या करती हू, उससे प्रेम से नहीं बोलती। गौरी के बम्बई आने पर उसके प्रति मेरे व्यवहार से मा खिन्न थी। अब गौरी पर मेरा हार्दिक प्रेम देखकर मा को सन्तोष हो रहा था।

गौरी के पास जाकर इन्द्रजीत से भेंट को टाल देना सम्भव नहीं होगा, इसीलिए कोल्हापुर जाना मुझे भारी लग रहा था, पर गौरी के पत्र के ये वाक्य मुझे बुला रहे थे, मैं अब अधिक दिन नहीं जीऊंगी, दीदी, मैं बहुत निराश हू, बहुत डर गयी हू।"

उसके इन शब्दों से मैं घबरा गयी थी। उसने मुझे पहली बार 'दीदी'

रहा था। मदद के लिए मुझे पुकारा था। मु
प्रकट की थी।

गौरी ने बार बार क्यों उल्लेख किया कि व
का ऐसा डर होगा उसे ? उसके मन में मरने के
उसे बीमारी का डर है या अन्य किसी का ?
इन्द्रजीत ने मुझे धोखा देकर गौरी से विवाह कि
ऐसा क्यों ?

मुझे गौरी की चिन्ता हो रही थी।

इन्द्रजीत पर गुस्सा आ रहा था। अन्तर्मन से इ
कर रही थी।

मैंने निश्चय किया था कि कोल्हापुर में इन्द्रजीत को जितना सम्भव हुआ, टालने का प्रयास करूंगी। मैंने गौरी को लिखा था, "मैं इस दिन कोल्हापुर आ रही हूं। तू इन्द्रजीत को बताना मत।" पर उपयोग कुछ नहीं हुआ। इन्द्रजीत मुझे लेने के लिए स्टेशन पर आया था। इससे मैं समझ गयी कि गौरी के नाम के सारे पत्र वह पढ़ता है।

मैंने इन्द्रजीत को कई दिनों बाद देखा था। एक समय ऐसा था कि इन्द्रजीत से मिले बिना मेरा एक दिन भी नहीं जाता था। इन्द्रजीत को देखकर एक ओर तो गुस्सा आ रहा था तथा दूसरी ओर मन अस्वस्थ हो उठा था। जिस इन्द्रजीत की मैं प्रेयसी थी, वह अब मेरी छोटी बहन का पति था। मेरे लिए परपुरुष था। मुझे तो उसने धोखा दिया ही, पर मेरी छोटी बहन को भी सुख नहीं दिया। उसने मुझसे पूछा—

"गौरी ने तुझे पत्र में ऐसा क्या लिखा था ? तुझे यहां क्यों बुलाया ? और तेरे यहां आने की बात मुझसे क्यों छिपा रखी थी ?"

मैंने गुस्से में होंठ चबाते हुए उससे पूछा, "गौरी को लिखा गया मेरा निजी पत्र तूने क्यों पढ़ा ?"

"मुझे क्या पता कि तुम दोनों में निजी पत्र-व्यवहार होता है। मैं तो सोचता था कि तुम दोनों एक-दूसरे से नहीं बोलतीं। गौरी ने मुझसे छिपाकर तुझे पत्र लिखा था, यह तो तेरे पत्र से ही पता चला।"

"तूने पत्र पढ़ लिया, इसी से न ! मेरे पत्रों से तेरा क्या सम्बन्ध ?"

। लिखा था तूने । कुछ भी हो, गौरी और मैं पति-पत्नी
थव बात को जानना मेरा अधिकार है। गौरी ने तुझे क्या
"मा ?"

"अपना अधिकार तू गौरी पर ही जमा। उसने क्या लिखा था, यह उसी से पूछ। मुझ पर तेरा कोई अधिकार नही है और न ही मुझसे तू कुछ जान सकेगा।" मैं एकदम ज़ोर से बोल गयी।

मेरे कठोर उत्तर से वह दुखित दिखायी दिया। उस ओर दुर्लक्ष्य कर मैंने पूछा—

"गौरी की तबीयत कैसी है ?"

"उसकी तबीयत को क्या हुआ ?"

"मा ने मुझे बताया था कि वह बीमार है।"

"गौरी ने ही तुझे पत्र में लिखा होगा। सही बात तो यह है कि उसे कोई शारीरिक बीमारी नही है। उसकी बीमारी तो मानसिक है और वह भी स्वय पैदा की गयी।"

"मन की बीमारी तो शरीर की बीमारी से भी खराब होती है, उसमे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है।"

"इसका मैं क्या करू ? अपनी बीमारी की सारी जिम्मेदारी उसी की है।"

"बहुत बढिया ! तेरी तो कोई गलती नही।"

"नही, मेरी कोई नही। कम-से-कम गौरी के बारे मे तो।"

"यह बात तो गौरी को कहनी चाहिए।"

"गौरी का क्या कहना है ? वह मुझे ही दोष देती है क्या ?"

यह प्रश्न पूछते समय इन्द्रजीत काफी चिढा हुआ दिखायी दिया। मैंने उससे कहा—

"गौरी का क्या कहना है, मैं तुझे बताना नही चाहती। मैं स्पष्ट कर चुकी हू कि मैं तुझे कुछ नही बताऊगी।"

घर के पास पहुचते ही मैं दौडकर अन्दर पहुची। मेरी अपेक्षा थी कि गौरी मेरी राह देखती हॉल मे ही मुझे मिलेगी, पर पहले मिली राधा मौसी। उन्होने कहा—

"गौरी बाई ऊपर कमरे मे हैं। उन्हे कुछ बुखार है।"

"अच्छा, गौरी वास्तव मे बीमार है। मैं तो समझी थी कि लडका मर जाने से सिर्फ उसके मन पर ही असर हुआ होगा।" यह वाक्य मैने इन्द्रजीत को सुनाकर कहा, पर उसका चेहरा निर्विकार था।

मैं सीढिया चढकर गौरी के कमरे म गयी। पलग पर लेटी हुई गौरी की ओर देखा, पर स्वय की आखो पर विश्वास ही नही हुआ।

यह गौरी ?...

या यह गौरी का भूत !

उसके अस्त-व्यस्त केश, मलिन भ्रान्त चेहरा, निराश आखें, सूखे हुए होठ, चेहरे पर झुरिया, कृश हाथो में कोहनी तक सरकी हुई चूडिया—यह सब देखकर मुझे अक्षरश झुरझुरी छूट गयी।

इन्द्रजीत ने तो मुझसे कहा था, "गौरी को क्या हुआ ?" मुझे क्या पता कि इन्द्रजीत ऐसा राक्षस होगा !

आहट सुनकर गौरी ने मेरी ओर देखा।

मुझे देखकर उसका मलिन चेहरा कुछ खिल उठा।

"गौरी...गौरी ! कैसी यह तेरी हालत . "

"दीदी, तू आयी, मुझे बहुत अच्छा लगा। मुझे विश्वास था कि मेरा पत्र पाकर तू अवश्य आयेगी। तू तो शुरू से ही बडे मन की और क्षमाशील है।"

"ऐसी बात मत कर, गौरी ! तूने मुझे पत्र पहले क्यो नही भेजा ?"

"किस मुह से पत्र भेजती मैं ? पर आखिरकार लिखने की हिम्मत की ही। मेरी बडी इच्छा थी कि कम-से-कम एक बार तुझसे मिलकर माफी माग लू। मुझमे शक्ति होती तो मैं स्वय आती।"

"पगली, मुझसे किस बात की क्षमा मागनी थी ? कुछ भी हो, हम बहनो का खून एक है.. एक-दूसरे पर कितना ही गुस्सा करें, पर हृदय में तो प्रेम रहता ही है। मैं तुमसे नाराज नही हू, पर एक बात से दुख हो रहा है—शादी करके तुझे सुखी होना था।"

"दीदी, स्वार्थी मनुष्यो का सुख पर अधिकार नही होता। तुझे भारी दुख पहुचाकर मैने अपना स्वार्थ पूरा किया। उसी का प्रायश्चित कर रही

। यही भगवान का न्याय है।"

"तू मैं न्याय की बातें कर रही है? भयकर से भयकर अपराध करने वालों को भी भगवान कभी ऐसी सज़ा देता है क्या? वे तो अपराध करके भी सुखी रहते हैं। भावुक मन के व्यक्ति ही दुख पाते हैं। मेरे प्रति तून वेली ने अपराध नहीं किया, पर दड केवल तुझे ही मिल रहा है।"

गौरी कुछ बोलने वाली थी, किन्तु इन्द्रजीत को कमरे में आते देख-कर वह चुप हो गयी। होठ पर अगुली रखकर मुझे भी चुप रहने का इशारा किया।

मेरे कपाल पर बल पड गये—गौरी इन्द्रजीत से इतना क्यों डरती है! घर पर तो गौरी किसी की धाक नही मानती थी, फिर इन्द्रजीत का इतना भय क्यों?

मानसिक त्रास के साथ-साथ वह उसे शारीरिक पीडा भी देता होगा क्या?

मैं इन्द्रजीत को अधिकाधिक टालने का सोचकर कोल्हापुर आयी थी। पर यहा तो इन्द्रजीत पहरेदार की तरह गौरी के कमरे में बना रहता था। वह मुझे और गौरी को एकान्त म मिलने का अवसर ही नही दे रहा था। अन्त में एक दिन क्षुब्ध होकर मैंने गौरी स कहा—

"इन्द्रजीत आजकल वर्कशॉप नही जाता? क्या आजकल तेरी बीमारी के कारण हमेशा घर ही रहता है?"

"मेरे लिए वह क्यों घर रहेगा? वह तो मुझे देखना तक नही चाहता। तू है इसीलिए घर पर रहता है, अन्यथा घर आता तक नहीं है। मेरा शरीर बुखार से जल रहा हो, तो भी नही। राधा मौसी मेरे पास रहती हैं और प्रधान काका दवा देते है।"

उसका स्वर करुणा से ओतप्रोत था।

पर उस करुणा स मेरी आखें गीली होने की अपेक्षा क्रोध से लाल हो उठीं। इन्द्रजीत के बारे में मेरे मन मे अधिक कटुता भर गयी।

मेरे कन्धे पर सिर रखकर गौरी ने भरे गले से कहा—

"उससे विवाह करके मेरा जीवन इतना दुखी हो जायगा, इसकी कल्पना तक मुझे होती तो.. तो मैं ऐसी मूर्खता नही करती। तुझे भारी

ख देकर भी मैं सुखी नही हो सकी, फिर इन्द्रजीत को क्या दोष दू। सारी ज़िम्मेदारी मेरी ही है। मैं स्वयं उसके गले पडी।"

"ताली एक हाथ से नही बजती, गौरी! तू उसके गले पडी, पर उसने भी तो गले पडने दिया।"

"इसीलिए तो मैं सोचती थी कि उसका प्रेम भी प्राप्त कर लूगी। विवाह के बाद जीवन सुखी बनाने के लिए मैंने खूब प्रयास किया। पर इन्द्रजीत ने तो कभी सहयोग नही दिया।"

"फिर उसने तुझसे शादी ही क्यो की?"

"दीदी, मैं भी यही पूछती हू कि किसी भी कारण से तूने मुझसे विवाह किया, फिर अपना जीवन सुखी करने का प्रयास क्यो नही करता? वास्तव मे मैंने इन्द्रजीत को पहचानने मे ही भूल की।"

"कुछ मनुष्यो का स्वभाव बडा विचित्र होता है। दिखायी देते हैं एक तरह के, होते हैं दूसरी तरह के।"

"हमारे विवाह के बाद इन्द्रजीत अधाधुन्ध शराब पीने लगा। तुझसे मुझे अब कुछ नही छिपाना। पहले भी इन्द्रजीत कभी-कभी शराब पीता था, पर अब तो मछली की तरह पीता है। उसने मुझसे शादी की, किन्तु तुझे कभी नही भूल सका। दीदी, वह आज भी तुझसे प्रेम करता है।"

"छि-छि! मेरे सामने ऐसी बात मत बोल। आइ हेट हिम!"

"दीदी, तुझे घृणा तो मुझसे करना चाहिए।"

"नही, गौरी! तेरा तो स्वभाव ही अल्हड था।"

"दीदी, तुझे मुझ पर बडी दया आती है न? मुझे भी खुद पर दया आती है।"

"गौरी, तू एकाएक ही मुझे दीदी कैसे कहने लगी?"

"तू मेरी दीदी ही तो है। मुझसे हर तरह से बडी है, किन्तु मुझे पता अब चला। मैं इन्द्रजीत को अच्छी नही लगती। वह नशे मे होता है, तभी मेरे पास आता है। मुझे आलिंगन मे लेकर भी वह नशे मे 'मुम्मी' कहकर ही पुकारता है।"

"बस कर, गौरी, स्टॉप इट। इन्द्रजीत जैसे मनुष्य से मैं प्रेम कैसे कर सकी, यही समझ मे नही आया। अब तो मैं उससे घृणा ही करती हू।"

"उसने मुझसे विवाह किया इसीलिए न ? अर्थात् मूल दोष तो मेरा ही है, दीदी ! मेरा बच्चा जिन्दा रह जाता, वह जैसा मेरा था वैसा ही इन्द्रजीत का। वह रहता तो हम दोनों के बीच एक पुल बनता, पर मैं तो भाग्यहीन हूं। अब तो मेरे जीवन का ही अर्थ शेष नहीं रहा।"

"गौरी, ऐसा क्यों कहती है ? अभी तेरी उम्र नहीं निकल गयी, और भी बच्चे होंगे। विचारकर देख—अभी जो हुआ ठीक ही हुआ। तेरा और इन्द्रजीत का वैवाहिक जीवन जब तक सुखी नहीं बनता, तब तक बच्चे का झंझट क्यों। मुझे तो लगता है कि तू इन्द्रजीत से तलाक ले ले।"

"दीदी, मुझे और बच्चा नहीं चाहिए। इन्द्रजीत केवल नशे में ही मेरे पास आये, इससे बढ़कर विडंबना कौन सी हो सकती है।"

"इसीलिए तो कहती हूं कि तलाक लेकर मुक्त हो जा।"

"दीदी, मैं तेरी तरह इन्द्रजीत से घृणा नहीं करती, पर मैं उससे डरती हूं—बहुत डरती हूं। मुझे उससे तलाक भी नहीं चाहिए।"

"पर क्यों ? तुझे उससे इतना डर क्यों लगता है ?"

"अपराधी मन भयाकुल ही रहता है।"

"अपराध तूने अकेली ने नहीं किया। मेरे विचार से तुझे तलाक ले ही लेना चाहिए।"

"मुझे किस आधार पर तलाक मिलेगा ?"

"अपने अण्णा तुझे बतायेंगे। मैं कोई वकील नहीं हूं, पर इतना समझती हूं कि तेरे पति ने तुझे शारीरिक और मानसिक त्रास दिया, इस आधार पर तलाक हो सकता है।"

इस पर वह कुछ बोलने वाली थी, किन्तु उसी समय इन्द्रजीत के आ जाने से चुप रह गयी।

उस रात उसे एकाएक बुखार चढ़ा। बुखार की बेहोशी में वह एक ही वाक्य कहती थी, "मेरा बच्चा जीवित रहना था।"

उसकी हालत देखकर मैं घबरा गयी। तुरन्त ही पड़ोस में जाकर डॉ० प्रधान को फोन किया। गौरी का इलाज वे ही कर रहे थे। डॉ० प्रधान तुरन्त ही आये। उन्होंने गौरी की जांच करके इंजेक्शन दिया और कुछ गोलियां भी दीं।

मैंने पूछा, "प्रधान काका, गौरी कब अच्छी होगी ? मैं उसे बम्बई ले जाना चाहता हूं।"

"गौरी बहुत कमजोर है, पर बुखार उतरने पर स्पेशल वाहन मे उसे ले जाया जा सकता है। हवा पानी बदलने से उसे लाभ भी होगा।"

'मैं घर की गाडी लेकर अण्णा को ही यहा बुला लेती हूं। आज ही अण्णा को पत्र लिखती हूं।"

"ठीक है, ऐसा ही कर। मैं सुबह फिर आऊगा।' कहकर डॉ० प्रधान चले गये।

मैंने अण्णा को एक्सप्रेस पत्र भेज दिया।

८

रात्रि के ग्यारह बजे थे। गौरी गहरी नीद म थी। उसे तेज बुखार था। मुझे नीद नही आ रही थी।

मैं समझ नही पा रही थी कि क्या किया जाये। लगा कि नीचे के हाल में जाकर पढने के लिए एकाध पुस्तक ले आयी जाये। इन्द्रजीत के कमरे म भी रोशनी नही थी। दोनो पति-पत्नी कई दिनो से अलग-अलग कमरो में सोते थे। ऊपर का तीसरा कमरा मेरे काम आ रहा था। किसी की नीद मे व्याघात न पडने देने के विचार से लाइट जलाये बिना ही मैं नीचे उतरी। हॉल म जाते ही अंधेरे मे किसी व्यक्ति से टकरा गयी। ध्यान में आ गया कि वह इन्द्रजीत ही था। मैं गिर पडती, लेकिन उसने मुझे दोनो हाथो से सम्हाल लिया।

"कौन, सुम्मी ? तू ही है न ?" उसने पूछा।

"हा, मैं ही। कितनी डर गयी मैं ? मुझे क्या कल्पना थी कि तू इस समय यहा होगा ?"

"मुझे भी क्या पता कि तू अंधेरे में ही सीढिया उतरेगी ?"

कितने दिन बाद मुझे इन्द्रजीत का इतना निकट का स्पर्श मिला था। मुझे सम्हालने के लिए उसने मेरे कन्धे पर हाथ रखा था, किन्तु अब वही

हाथ मेरी पीठ पर लेकर मुझे निकट लेते हुए वह बोला—

"सुम्मी ! सुम्मी ! ..."

उसके शारीरिक स्पर्श से क्षण-भर के लिए मेरे मन का सन्तुलन भी बिगड़ गया। पर मैं एकदम होश में आ गयी।

ऊपर के कमरे में गौरी बीमार असहाय स्थिति में सोयी थी और मैं यह क्या कर रही थी ?

इन्द्रजीत के स्पर्श से मैं देह-भान भूली भी तो क्यों ?

उसके प्रेम से अब मेरा कैसा नाता ?

अब मुझे उससे प्रेम नहीं, घृणा है।

उसे जोर से धक्का देकर स्वयं को छुड़ाते हुए मैंने कठोर स्वर में कहा—

"इन्द्रजीत, जाने दे मुझे, मैं पुस्तक लेने आयी थी।"

उसने मुझे एकदम छोड़ दिया और हाथ ऊपर करके बत्ती जलायी। मेरी ओर न देखते हुए उसने कहा—

"नीचे के सारे दरवाजे बन्द करके मैं सोने के लिए अभी ऊपर ही जा रहा था। मुझे कल्पना तक नहीं थी कि तू जगी होगी।"

मैंने मन में कहा, "कल्पना नहीं होगी। टक्कर भी अकस्मात लगी होगी, पर बाद में मेरा आलिंगन तो अकस्मात नहीं था।"

अब दिखा रहा था जैसे कुछ हुआ ही नहीं। उसने मुझे छोड़ दिया था पर रास्ता रोके खड़ा था। मैंने जरा जोर से कहा, "मुझे रास्ता दे।"

"तुझे नींद नहीं आ रही हो तो हॉल में बैठकर कुछ गपशप करें क्या ? मुझे भी नींद नहीं आ रही है।"

"मुझे तुझसे कोई बात नहीं करना है। मुझे जाने दे।"

"सुम्मी, जो कुछ हो गया उसे तू भुला नहीं सकती क्या ?"

"मैं तो कभी का सब कुछ भूल गयी, गौरी का अपराध तो मैं क्षमा भी कर चुकी हूं।"

"गौरी को क्षमा किया है तो मुझे भी कर। एक बार मेरी बात भी समझ ले, सुम्मी।"

"इन्द्रजीत, तूने बेकार में यह विषय निकाला। कुछ भी हो, गौरी मेरी छोटी बहन है। हमारा खून का रिश्ता है। उसे अपने अपराध का सच्चा

पश्चात्ताप हुआ है। तेरा और मेरा क्या सम्बन्ध!"

"कुछ भी सम्बन्ध नहीं?"

"कोई सम्बन्ध नहीं और अब तो है ही नहीं। मुझे सब कुछ भूलना है।"

"कम-से-कम एक बार तो मुझे अपनी बात कहने का अवसर दे मुझे बताने तो दे कि यह सब कैसे हुआ।"

"इन्द्रजीत, मुझे कुछ नहीं सुनना। मुझे तुझसे बात नहीं करनी। तेरे लिए मेरे मन में अब राग, द्वेष, मोह, मत्सर आदि किसी प्रकार की भावना नहीं है।"

"जैसी तेरी मर्जी, सुम्मी!" वह हताश स्वर में बोला। उसका चेहरा मुर्झाया हुआ दिखायी दिया।

मैंने पीठ फेर ली। वह हताश कदमों से सीढ़ियां चढ़ने लगा। मैं हॉल में चली गयी। मैं यही सोच रही थी कि कब गौरी अच्छी हो और मैं उसे लेकर बम्बई चली जाऊं।

गौरी का बुखार दूसरे ही दिन उतर गया। वह थकी हुई थी। कुछ बोल नहीं रही थी। मैंने कहा—

"तुझे आराम करना हो तो मैं अपने कमरे में जाकर कुछ पढ़ती हूं।"

"इसके बजाय तू बाई से मिलकर क्यों नहीं आती!"

"उनके पास जाने का मतलब दो-तीन घंटे होता है।"

"होने दे, यहां आने के बाद तू बाई के पास अभी तक नहीं जा पायी है। बाई स्कूल से आ गयी होंगी। अभी दोपहर में उनसे भेंट हो सकेगी। तू जाकर आराम से आ। कोई चिन्ता नहीं।"

"पर तेरे पास कौन रहेगा। राधा मौसी भी अपनी लड़की के पास चली गयी है। वह तो रात को ही आयेगी। इन्द्रजीत भी घर नहीं है।"

"रोज दोपहर में घर पर कौन रहता है। मैं अकेली ही तो रहती हूं। इन्द्रजीत तो तू है तभी तक घर रहता है।"

"रोज की बात अलग है पर बुखार के कारण आज तो तू बहुत कमजोर हो रही है।"

"पर आज बुखार तो नहीं है। मैं आराम से लेटी रहूंगी। तू निश्चिन्त

होकर जा।"

"तू ऊपर सोयी है और नीचे कोई आया तो दरवाजा खोलना पड़ेगा और तुझे कष्ट होगा।"

"दोपहर में अपने यहां कभी कोई नहीं आता। तू बाहर से लैच की दूसरी ताली साथ ले जा। इन्द्रजीत के पास भी एक ताली है।"

"ठीक है। मैं जाकर आती हूं। तू अकेली रहेगी न ?"

"मुझे नींद आ रही है। एक बार आंख लगी कि दो-तीन घंटे यों ही निकल जायेंगे। शाम तक घर आयेगी तो भी चिन्ता नहीं।"

"ठीक है, ठीक है। तू आराम कर और जल्दी अच्छी हो।"

"तूने मुझे क्षमा कर दिया, इसम ही मुझे अच्छा लग रहा है।"

उसने आखें बन्द कर लीं। मैं उसके कमरे का दरवाजा बन्द करके निकल गयी। दोपहर में सोने अथवा पढ़ते रहने की अपेक्षा मुझे यही अच्छा लगा कि बाई के पास जाकर आऊं। मैंने कपड़े बदले, पर्स में पैसे लिये तथा बाहर के ताले की चाभी उठायी। निकलने से पूर्व एक बार गौरी के कमरे का दरवाजा धीरे से खोलकर देखा। वह गहरी नींद में थी। मुझे लगा कि डॉक्टर ने उसे सीडेटिव गोलियां दी होंगी ताकि अच्छी नींद आ जाए। मैं निश्चिन्त मन से बाहर निकली।

मैं पहले बाई के पास गयी। वे घर पर ही थीं। उन्होंने आग्रह किया कि सदू के घर आने तक मैं रुकूं। दो बार चाय-नाश्ता और पेट-भर गपशप के बाद ही मैं वहां से निकल पायी। रास्ते में मेरी मित्र मोहिनी खरे का घर था। मैं उसे टालकर निकलना चाहती थी, किन्तु वह सामने ही मिल गयी। थोड़ी देर रुकना ही पड़ा।

खूब जल्दी करके भी वापस घर पहुंची, उस समय शाम के छह बज चुके थे। ढाई बजे मैं घर से निकली थी। साढ़े तीन घंटे बाद वापस आयी थी। गौरी ने इजाजत दी थी, तो भी क्या हुआ ? मुझे इतनी देर नहीं करनी चाहिए थी।

गौरी की चिन्ता करते हुए मैं उसके कमरे में पहुंची। वह बिस्तर पर नहीं थी। शायद बाथरूम गयी होगी, यह सोचकर वहीं उसका इन्तजार करने का निश्चय किया। उसके पलंग पर एक जानी-पहचानी पुस्तक पड़ी

हुई दिखायी दी।

पुस्तक थी 'भावतरंग'।

पुस्तक को गौरी के पलंग पर देखकर आश्चर्य हुआ। मैंने पुस्तक उठायी। एक स्थान पर शायद निशानी के लिए पेपर-कटर रखा था। मैं देखने लगी कि गौरी कौन सी कविता पढ़ रही थी।

उस पृष्ठ पर कविता थी 'शीतोपचार'। गौरी ने शीर्षक के चारों ओर पेन से हरा वर्तुल खींच रखा था। हरी स्याही का प्रयोग गौरी ही करती थी।

मैं पलंग पर बैठकर कविता पढ़ने लगी। सरसरी निगाह से देखते ही मैं चमक उठी, इसलिए अधिक ध्यान से पढ़ने लगी—

विवाह बन्धन को निरगाठ न कहो,
प्रेम रज्जू या बंधन—उसका कुछ अर्थ भी है!
परिणय हो गया तो मैं प्रेम बिन उपासी हूं,
उसको चाह है दूसरे की, मैं वर्णन कैसे करूं?
मेरे आलिंगन में रहते करता उसका चिन्तन,
इस यान्त्रिक क्रिया को कैसे कहूं मिलन?
मेरे सौभाग्य का धनी, है अन्य पर अनुरक्त
मेरा मन दिन-रात जलता है मत्सराग्नि से,
सुख हो गया उसमें भस्म, शेष रही राख
दो तलवारें एक म्यान में रहें कैसे?
मत्सर और प्रीति बसें कैसे एक ही मन में?

मैं पंक्तियों को बार-बार पढ़ने लगी। पढ़ते-पढ़ते मन में विचारों का भंझावात खड़ा हो गया। गौरी को इस कविता का कौन-सा अर्थ अभिप्रेत होगा। गौरी ने कहा भी था—

"इन्द्रजीत को मैं अच्छी नहीं लगती। वह नशे में होता है, उसी समय मेरे पास आता है...मुझे आलिंगन में लेकर भी बेहोशी में 'गुम्मी' को पुकारता है..."

उनके वाक्यों की प्रतिध्वनि ही तो इस कविता में थी। विवाह-बंधन में बंधे दो व्यक्तियों में प्रेम का निर्माण न हो, तो उस बन्धन का अर्थ ही

क्या ? पर इन दोनो ने तो अपनी इच्छा से विवाह किया था।

मैं तो समझती थी कि गौरी के रूपजाल में फसकर इन्द्रजीत ने मुझे धोखा देकर भी उससे शादी की। शायद वासना प्रेम से प्रबल रही होगी। इसीलिए दोनों में बाद मे मनमुटाव हो गया। गौरी ने तो अपना संसार सुखी बनाने का प्रयास किया था। इन्द्रजीत ने ऐसा प्रयास क्यो नही किया ? इन्द्रजीत ने मेरा प्रेम ठुकराया, फिर उस मेरी याद क्यों आती है ? इतना धोखा देकर भी वह मेरा चिन्तन करता है, तो क्यों ?

'मेरे आलिंगन म रहन करता उसका चिन्तन.. '

क्या इन्द्रजीत मेरा चिन्तन करता है ? नही, मैं तो उसकी थी ही।

त्रिपुरी पूर्णिमा के उस मेले में जो झगड़ा हुआ, वह, ऐसा तो नही था, जिससे कि किसी का मन दुखी हो और वह दूर चला जाये, पर उसी कारण तो इन्द्रजीत ने मुझे जलाने के लिए गौरी से विवाह किया था।

इन्द्रजीत एक रहस्य था। मैं उसे पहचान नही पायी थी। गौरी भी उसे नही समझ सकी थी।

कविता की अन्तिम दो पंक्तियों का अर्थ मैं समझ नही पा रही थी—दो तलवार और एक म्यान का क्या अर्थ ?

और फिर गौरी इन्द्रजीत से क्यो डरती थी ?

उसे यह डर तो नही होगा कि इन्द्रजीत उसे छोड जायेगा ? "मैं इन्द्रजीत से डरती हू। *बहुत डरती हू।*" इन शब्दो में तो दूसरी प्रकार का ही भय व्यक्त होता था।

मैं विचारो में खो गयी। एकाएक मेरे सिर पर खर्रर-खर्रर की आवाज़ का धक्का लगा। मैंने चमककर छत की ओर देखा। उस कमरे के ऊपर मेडी थी। क्या गौरी मेडी में गयी होगी ?

मैं तो यह सोचकर ही राह देख रही थी कि वह बाथरूम गयी होगी। वह निश्चित ऊपर ही गयी है, तबीयत खराब रहते वह ऊपर क्यो गयी ? मुझे गौरी पर गुस्सा आया।

उसे बुलाने के लिए मैं उठने ही वाली थी कि ऊपर से किसी के दौड-भाग की आवाज़ आयी। हाथ की पुस्तक पलग पर फेंककर मैं कुछ गुस्से मे गौरी के कमरे से बाहर निकली तथा उपर सीढियो की ओर गयी...

मैं रास्ते में ही थम गयी।

जीने की सबसे उपरी सीढ़ी पर इन्द्रजीत खड़ा था। दोनों हाथों पर गौरी का चेतना-रहित शरीर था। उसकी गर्दन लटकी हुई थी। आखें सफेद झक थीं। मैं घबराकर चिल्लायी। मुझे देखकर इन्द्रजीत को धक्का लगा। सीढ़ियां चढ़ते हुए मैंने कहा—

"इन्द्रजीत, तूने उसका क्या किया? क्या किया?" इन्द्रजीत होश-हवास में आते हुए बोला—

'सुम्मी, तू पहले पड़ोस में कर्णिक के घर जाकर प्रधान काका को फोन कर। गौरी बेहोश हो गयी है। जा, दौड़, जल्दी कर! मैं तब तक गौरी को नीचे लाता हूं और उसके पास रहता हूं। पर तू समय मत खो—तुरंत जा।"

प्रधान काका को बुलाने की तीव्र आवश्यकता समझकर मैं कर्णिक के घर की ओर दौड़ी। कर्णिक और प्रधान काका साढ़ू थे। सौभाग्य से डॉ० प्रधान मुझे कर्णिक के घर ही मिल गये। गौरी के बेहोश होने की बात सुन कर वे एकदम मेरे साथ आ गये।

मेरी छाती धड़-धड़ कर रही थी। मन में शंका-कुशंकाएं उठ रही थीं।

गौरी को जिस अवस्था में मैंने देखा, वह अच्छी नहीं थी—पर मैंने सरसरी तौर पर ही तो देखा था।

इन्द्रजीत के हाथों में गौरी का निर्जीव-सा डोल मस्तक, उसकी खुली आंखें, उसकी त्वचा का चमत्कारिक सफेद रंग और...और उसके गाल पर एक लम्बा लाल निशान भी तो मुझे दिखायी दिया था।

डॉ० प्रधान गौरी के पास पहुंचे, उस समय तक इन्द्रजीत उसे पलंग पर लिटाकर चद्दर से गले तक ढक चुका था। आंखें भी अब बन्द थीं। निकट से त्वचा का रंग और अधिक सफ़ेद दिखायी दे रहा था।

इन्द्रजीत ने डॉ० प्रधान से धीरे से कुछ कहा। उन दोनों की आंखों-ही आंखों में कुछ इशारा हुआ।

मैं गौरी के पास जानेवाली थी कि डॉ० प्रधान ने मुझे रोकते हुए कहा—

"सुमित्रा, नीचे रसोईघर में जा और एक पतीली में पानी उबालकर

ले था। जा जल्दी।"

मैंने पूछा, "प्रधान काका, इंजेक्शन की सिरिंज के लिए क्या?"

"नहीं, तुमसे तो जो कहा वह कर। पूछताछ में समय मत गवा।"

मैं क्या बोलती। चुपचाप नीचे गयी और गैस पर पानी रखा। मन में विचार-चक्र चालू ही था।

मैं घर लौटी उस समय समझी थी कि घर पर गौरी के अलावा कोई भी नहीं है, पर इन्द्रजीत निश्चित ही मुझसे पहले आया होगा। उसके पास भी घर की ताली थी। वह ऊपर मेडी पर क्या कर रहा था? गौरी तो इतनी कमजोर थी कि ऊपर गयी ही कैसे? क्या मरने गयी थी? मेरे विचारों से मेरा ही शरीर सिहर उठा। मैंने भगवान से प्रार्थना की कि 'गौरी को सुखी रख।' गौरी बेहोश कैसे हो गयी? मुझे उसकी बहुत चिन्ता हो रही थी।

पानी उबलने लगा। मैंने गैस बन्द की और पतीली लेकर सावधानी से ऊपर चढ़ी। देखती हूं तो गौरी के कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द था। मुझे आश्चर्य हुआ। दरवाजे की साकल बजाकर मैंने कहा—

"प्रधान काका, दरवाजा खोलो न! मैं पानी लायी हू।"

"अभी तू बाहर ही ठहर। मुझे अब पानी नहीं चाहिए।" उन्होंने अन्दर से ही कहा।

मैं कुछ समझ नहीं पा रही थी। मैं कुछ गुस्से में ही पानी फेंक आयी। करीब पांच-सात मिनट बाद उन्होंने दरवाजा खोला। उनकी चर्या उतरी हुई थी। इन्द्रजीत सिर पर हाथ रखकर पलंग के पास कुर्सी पर बैठा था। मैं गौरी के पास जाने लगी, तब मेरे कंधे पर हाथ रखकर डॉ॰ प्रधान ने कहा—

'सुमित्रा, तुझे कैसे बताऊं। समझ नहीं पा रहा। मैंने पूरा प्रयास किया, पर . पर .."

"तुम क्या बोल रहे हो, प्रधान काका? गौरी को क्या हुआ? वह अभी भी होश में नहीं आयी क्या? उसे अस्पताल ले जाना पड़ेगा क्या? बोलो, बोलते क्यों नहीं?"

"बच्ची, आज तेरे धैर्य की परीक्षा है। अब गौरी कभी होश में नहीं

आयेगी। वह सारे प्रयासो के उस पार चली गयी।"

"प्रधान काका!" मैं जोर से चिल्लायी।

"सुमित्रा, तुझे क्या बताऊं? गौरी इज डेड!"

"नही, नही!" मैंने चीखकर रोते हुए कहा, 'यह सही नही है।' उनके हाथ को झटका देते हुए मैं गौरी की तरफ दौडी, तो भी उन्होने मुझे उसके अधिक निकट नही जाने दिया। मैं गौरी की ओर टकटकी लगा कर देख रही थी। मन मे अनेक प्रश्नचिह्न थे—

गौरी गयी?...इस प्रकार कैसे गयी?..क्यो गयी?

पर प्रधान काका और इन्द्रजीत के पास मेरे सभी प्रश्नो के उत्तर थ। उन्होने बताया कि गौरी हार्ट फेल से मरी है। इन्द्रजीत फुरसत मिलते ही जब साढे पाच बजे घर आया तब मैं उसे कही दिखायी नही दी। गौरी तो घर पर ही होनी चाहिए थी। उसे भी न देखकर इन्द्रजीत को आश्चर्य हुआ। वह उसे ढूढने लगा। उसे मेडी का दरवाजा खुला दिखायी दिया। इसलिए वह ऊपर गया। वहा गौरी आडी-टेढी पडी हुई दिखायी दी। उसे बेहोश समझकर वह उसे नीचे ला रहा था कि जीने के नीचे मैं दिखायी दी। उसने मुझे प्रधान काका को फोन करने के लिए कणिक के घर भेज दिया।

डॉ० प्रधान गौरी को देखते ही समझ गये थे कि वह मर चुकी है, तो भी कुछ क्षण पूर्व बन्द हृदय क्रिया को चालू करने के प्रयास उन्होन किये। गौरी को कोरामिन का भी इंजेक्शन उन्होंने दिया। पर सब निष्फल रहा।

डॉ० प्रधान की इन बातो से मुझे सतोष नही हुआ। मैंने पूछा कि उन्होने मुझसे गरम पानी क्यो मगाया। तब उन्होने कहा, "गौरी की छाती सेंककर देखने का विचार था।"

मेरे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर मिलने पर भी मेरा मन शकाकुल था। मुझे यह सही नही लग रहा था कि हृदय गति बन्द होने से गौरी की मृत्यु हुई। पर प्रधान काका मुझसे झूठ क्यों बोलेंगे? मैं इन्द्रजीत पर सदेह कर सकती थी, पर प्रधान काका पर सन्देह करने म सकोच था। सभी कुछ अचानक हो जान से मैं विभ्रमित हो गयी थी। मेरा मन शून्य-बधिर बन

गया था। कुछ भी विचार करने की क्षमता नहीं रही थी।

बम्बई सूचना देनी ही थी। वणिक के यहां से बम्बई ट्रंककाल की, तब पता चला कि मेरा एक्सप्रेस पत्र पाते ही मां और अण्णा बम्बई से निकल चुके थे और शाम तक कोल्हापुर पहुंचने ही वाले थे।

वे रात तक घर आये। गौरी की मृत्यु के समाचार से वे शोकमग्न हो गये। हृदयगति बन्द होने से गौरी की मृत्यु पर उन्हें भी आश्चर्य हुआ। पर वे मेरी तरह शंकित नहीं हुए। डॉ० प्रधान ने जो कहा वह मान लिया। प्रधान काका अण्णा को बहुत देर तक कुछ बताते रहे। इन्द्रजीत सिर पर हाथ रखे कुर्सी पर ही बैठा था। घर के सभी लोग उसके लिए चिन्तित थे, किन्तु मेरे मन में उसके लिए सहानुभूति का लेश मात्र भी नहीं था।

गौरी का क्रियाकर्म हो जाने के बाद में, मां और अण्णा बम्बई लौट आये। मां और अण्णा व्याकुल थे कि इन्द्रजीत पर विपत्ति का पहाड़ टूटा है। तरुणावस्था में उसका विधुर हो जाने का सभी को दुःख था। पर मुझे तो संदेह था कि यह विधुरावस्था दैवी प्रकोप नहीं है। उसने खुद प्राप्त की है।

एक दिन मुझसे नहीं रहा गया। मैंने अण्णा से पूछ ही लिया, 'अण्णा, क्या तुमको सही लगता है कि हार्ट फेल से गौरी की मृत्यु हुई ?"

"ऐसा क्या पूछ रही है ?" अण्णा ने चमककर पूछा।

"हार्ट फेल से मरने वाला को हृदयरोग पहले से नहीं होता क्या ?"

'इसीलिए तुझे शंका हो रही है ? हृदय रोग रहते हुए भी कई बार वह समझ में नहीं आता। हमारे कोर्ट में एक वकील बहस करते-करते ही हार्ट फेल से मर गया। उसके हृदयरोग होने की कल्पना तक किसी को नहीं थी। फिर डॉ० प्रधान झूठ क्यों बोलेंगे ? डॉक्टरों को मृत्यु प्रमाणपत्र में मृत्यु का कारण लिखकर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। गलत लिखने पर उन्हें सजा भी हो सकती है।"

अण्णा की बात सुनकर मैं कुछ नहीं बोल सकी।

गौरी तो चली ही गयी।

अब दिमाग पर अधिक जोर देने से क्या लाभ ?

मनुष्य का मन बड़ा विचित्र होता है। मैंने प्रयास किया कि गौरी की मृत्यु की घटना विस्मृति के गर्त में चली जाये, पर मन में बार-बार एक ही अस्वस्थ विचार उठ रहा था, 'गौरी वास्तव में कैसे मरी ?' मेरे मन को संतोष नहीं था, इसीलिए शान्ति नहीं थी। वर्ष-भर की अशान्ति के बाद मैंने निश्चय किया कि गौरी की मृत्यु के सही कारण की जांच की जाये और इन्द्रजीत पर मेरा सन्देह ठीक निकला, तो उसे सजा दिलायी जाये।

गौरी की मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही तो हम दोनों बहनें जीवन में प्रथम बार एक-दूसरे के निकट आयी थीं। इन्द्रजीत की पहरेदारी के कारण ही तो हम दोनों को खुलकर बात करने का थोड़ा-सा ही अवसर मिला था। गौरी जो कुछ कहना चाहती थी, वह अधूरा ही रह गया था। मैं अन्त तक नहीं समझ पायी थी कि वह इन्द्रजीत से क्यों डरती है। मैं तो यही आशा कर रही थी कि बम्बई आने के बाद वह सब कुछ बतायेगी। क्या इन्द्रजीत ने उसका मुंह हमेशा के लिए बन्द करने का दांव पूरा किया ?

गौरी के वर्षश्राद्ध पर श्रद्धांजलि के बहाने गौरी की मृत्यु के कारण की जांच के लिए ही मैं कोल्हापुर आयी थी। मुझे अधिक दिन यहां नहीं रहना था। दोपहर निकल गयी तो भी कुछ प्रगति नहीं हुई। मुझे कुछ करना था...

जांच का प्रारम्भ कहां से करूं ?

इन्द्रजीत के शब्द मुझे याद आये, "सुमित्रा, तेरे प्रति मैंने बड़ा अन्याय किया। यह क्यों हुआ, कैसे हुआ—तूने पूछा ही नहीं। मैंने बताने का प्रयास किया, तो तूने सुना ही नहीं। तू हमेशा सत्य से दूर भागती रही।"

क्यों न इन्द्रजीत से ही साफ-साफ पूछा जाये ? यह निश्चय करके मैं उठी और इन्द्रजीत के कमरे की ओर गयी। बाहर से ही पूछा—

"इन्द्रजीत, तू जाग रहा है न ?"

"हां-हां। जाग रहा हूं। आ न अन्दर।"

"तू ही बाहर आ। मुझे तुमसे बात करनी है।"

"किसी भी कमरे में बैठकर बात करनी है, तो यहां क्या बुरा है।"

"ठीक है, हम यही बात करेंगे।" कहते हुए मैं अन्दर गयी। वह पलंग पर बैठा था। मैं निकट की कुर्सी पर बैठ गयी। मैंने कठोर स्वर मे उससे पूछा—

"इन्द्रजीत, मैं केवल गौरी को श्रद्धांजलि देने के लिए यहा नही आयी हू..."

"हा, मुझे भी ऐसा ही लगता है।" उसने निष्क्रिय रहकर कहा।

"मैं गौरी के प्रति अपना एक कर्तव्य पूरा करने हेतु यहा आयी हू।"

इस बार उसके कपाल पर बल दिखाई दिये। मैं बोलती रही—

"मुझे सशय है कि गौरी की मृत्यु उस प्रकार नही हुई, जैसा तुम बताते हो। मैं जानना चाहती हू कि गौरी कैसे मरी ? उसकी मृत्यु का रहस्य जाने बिना मैं कोल्हापुर से वापस नही जाऊगी।"

मेरा रुख देखकर इन्द्रजीत कुछ घबराया-सा दिखाई दिया, पर एक कुशल अभिनेता की तरह तुरन्त ही चेहरे के भाव बदलता हुआ शान्त स्वर मे बोला—

"तेरी बात का अर्थ ही मैं नही समझ पा रहा। तुझे मालूम ही है कि अकस्मात हार्टफेल से उसकी मृत्यु हो गयी।"

"गलत ! गौरी को कभी हृदय-विकार नही था। अकाल प्रसूती से वह कमजोर हो गयी थी। लडके के मरने का उसे गहरा दुख था। तू उसको मानसिक कष्ट देता था, इससे वह अधिक ही सूख गयी थी। पर यह पक्की बात है कि उसे हृदय-विकार नही था।"

"गौरी ने मुझे जो मानसिक कष्ट दिया उस पर विचार किया जाये, तो कहना पड़ेगा कि मैंने जान-बूझकर उसे कोई कष्ट नही दिया। मैंने शादी से पहले ही उसे बता दिया था कि मैं उसमे प्रेम नही करता। मेरे द्वारा तुझे धोखा हुआ, पर मैंने गौरी को धोखा नही दिया था।"

"तू अजीब बात कर रहा है। तू उससे प्रेम नही करता था। फिर तूने उससे विवाह क्यो किया ? शारीरिक वासना प्रबल हो जाने से ? यदि ऐसी बात थी, तो तूने उसे छला ही है ! विवाह के बाद तूने उसे सुख क्यो नही दिया ?"

"जो सम्भव नही था, वह मैं कैसे करता ? प्रत्येक बात के पीछे कोई

कारण-परम्परा तो होती ही है, सुम्मी।"

"यही बता कि गौरी की मृत्यु की कारण-परम्परा क्या थी ?"

"उसमे कारण-परम्परा की बात कहा से आयी ? प्रसव के बाद से ही वह शिकायत कर रही थी कि उसकी छाती मे दर्द रहता है। बच्चा मरने का उसे दुख था ही। शायद इसीलिए छाती मे दर्द हो, यह मानकर प्रधान काका ने उसे गोलिया भी दी थी। अब लगता है उस समय से ही उसे हृदय रोग होगा। प्रारम्भ मे ठीक प्रकार से निदान किया होता, तो उपचार भी सभव था। इस तरुणाई मे हृदय रोग की प्रधान काका को आशका भी नही थी। तो भी उन्होने इसके लिए कुछ माइल्ड गोलिया दी थी। वह बहुत अशक्त हो गयी थी तथा उसका मन भी दुर्बल हो गया था। इसमे उसके हृदय को धक्का न लगे, इसकी थोडी-बहुत सावधानी ली थी, पर शायद वह पूरी नही थी।"

"गौरी ने तो मुझे कभी नही बताया कि वह हृदय रोग की गोलिया भी खा रही है।"

"इसका कारण यही है कि प्रधान काका ने गौरी से कुछ भी नही कहा था। जब वे स्वय ही पूरी तरह निश्चित नही कर पाये थे, तो बीमार को क्या बताते ?"

"इन्द्रजीत तू कुछ भी कह, तेरी बात उस समय भी मेरे गले नही उतरी थी और आज भी नही।"

"सुमित्रा, तू वास्तव मे यही जानने के लिए कोल्हापुर आयी है ? मैं समझा था कि पुरानी स्मृतियो से बाध्य होकर ही तू यहा आयी होगी।"

"सभी पुरानी स्मृतिया मैंने गहराई मे दफना दी। मैं गौरी की मृत्यु के वास्तविक कारण की खोज मे ही यहा आयी हू। दूसरा कोई कारण नही है।"

"सुमित्रा, यह विषय हम दोनो को मानसिक कष्ट देगा, यह जानते हुए भी क्यो पुरानी बातें खोद रही है।"

"सत्य जाने बिना मेरे मन को शान्ति नही मिलेगी।"

"मन शान्ति ! इस तरह से तो तेरी मन शान्ति और समाप्त होगी। मैंने जो सच था, वही तुझे बताया। मुझ पर विश्वास रख। गौरी की मृत्यु

देख लिया और स्कूटर रोककर बोला—

"सुमित्रा, दोपहर से ही तेरा पता नही। तू बाई के यहा जाने को कह-कर घर से निकली थी। वर्कशॉप जाने के पूर्व तुझे घर की चाबी देने मैं बाई के पास गया, पर बाई ने बताया कि तू तो वहा पाच-दस मिनट मे अधिक नही रुकी। मैं यह भी नही समझ पा रहा था कि तुझे कहा ढूढू। तेरी दोनो मित्र मोहिनी और सूली के यहा तलाश किया, पर वहा भी पता नहीं चला। मुझे चिन्ता होने लगी थी इसीलिए वर्कशॉप का काम नौकरों पर छोडकर तुझे गाव-भर मे ढूंढ रहा था।"

"मुझे क्या कल्पना कि तू मुझे ढूढेगा। कोल्हापुर मे मैं खो तो नही सकती। बाई के यहा से निकलकर मैं अम्बाबाई के मन्दिर गयी और वहा से घूमती हुई आ रही हू।"

"बहुत अच्छा। गर्मी की इस दोपहर मे ही तुझे घूमने की सूझी। कमाल किया। चल, अब मेरे स्कूटर पर बैठ। मैं तुझे पहले घर छोडता हू, फिर जल्दी ही वर्कशॉप बन्द करके आता हू। तू राधा मौसी से चाय या कॉफी जो भी चाहिए, बनवा लेना।"

मैंने रूखेपन से ही उत्तर दिया, 'तू अपनी वर्कशॉप जा, मैं रिक्शा करके चली जाऊगी।"

"जैसी तेरी मर्जी। पर अब सीधे घर ही जाना। अब कही भाग मत जाना। मुझे तुझसे बहुत बात करनी है, तुझे सुनना ही पड़ेगा।"

उसी ने एक रिक्शा रोककर मुझे उसमे बिठाया और खुद स्कूटर को किक मारकर वर्कशॉप की ओर चला गया।

मैंने तय किया था कि अब कोल्हापुर ज्यादा दिन नही रहना। इन्द्रजीत के साथ उस घर मे रात निकालने की कल्पना से ही मेरे शरीर पर काटे खडे हो जाते थे। अभी घर से अपना सामान लेकर मैं सीधे बाई के यहा जाने वाली थी और सुबह पहली गाडी से बम्बई। इन्द्रजीत ने शायद मेरे इस गुप्त विचार को पढ लिया था और इसीलिए कहा था कि और कही भाग न जाना। मुझे इन्द्रजीत से डर लगने लगा था। उसने मेरा पीछा चाबी देने के लिए किया था अथवा अन्य कारण से। वह प्रधान काका के घर भी गया था क्या? उसे सारी बातें पता चली होगी।

आज रात को मुझे भयकर ही खतरा था।

इन्द्रजीत समझ गया था कि मैं गौरी की मृत्यु का रहस्य पहचान गयी हूं। इस रहस्य को दबाने के लिए यदि उसने मेरा ही काटा निकालने का निश्चय किया होगा तो ? व्यक्ति एक खून करे तो क्या अथवा अधिक करे तो क्या, सजा तो एक ही बार होगी। एक पाप को दबाने के लिए अपराधी दूसरा पाप भी करते हैं। इन्द्रजीत के चेहरे से तो कुछ प्रकट नही होता था। पर वह अभिनय करने मे तो प्रवीण था।

अब समय गवाने का अर्थ नही था। प्रत्येक क्षण खतरे का था।

मैं घर पहुची। राधा मौसी घर पर नहीं थी। इन्द्रजीत ने मुझसे झूठ क्यो कहा, मुझे चक्कर-से आ गये।

इन्द्रजीत ने मुझसे जो कहा, वह ठीक ही था। दोपहर से ही पेट मे कुछ न पडने तथा धूप मे घूमने के कारण मैं शक्तिहीन हो रही थी। अब बाहर निकलने से पहले कुछ दूध पीने से शक्ति आयेगी यह सोचकर मैं रसोईघर मे गयी। वहा टेबुल पर एक चिट्ठी रखी थी। राधा मौसी की थी। लिखा था—"प्रमीला के छोटे लडके की बीमारी की खबर पाकर मैं घर जा रही हू। आज रात का भोजन सुमित्रा बाई को ही बनाना पडेगा। पर मैं क्या करू ? रात को सोने के लिए आना भी सम्भव नही होगा। कल सुबह किसी तरह से आऊगी।"

चिट्ठी पढकर मैं फिर सभ्रम मे पड गयी। मैं एक कप दूध पीकर और एक केला खाकर सामान समेटने के लिए ऊपर जाने लगी।

मैं सीढी के पास पहुची ही थी कि बाहर दरवाजे के लैच मे ताली की आवाज हुई और साथ ही इन्द्रजीत घर मे घुसा। उसका चेहरा न जाने कैसा दिखायी दे रहा था। उसने कहा, "सुमित्रा, तू प्रधान काका के पास गयी थी ? फिर मुझसे झूठ क्यो बोली ? वर्कशॉप जाने पर पता चला कि प्रधान काका का फोन आया था। मैंने उन्हें फिर से फोन किया, तब उन्होने बताया कि गौरी की मृत्यु का रहस्य ढूढने तू उनके पास गयी थी और तू उनसे काफी ऊल-जलल बोली। वहा से तू सालवेकर काका के यहा भी गयी थी। सुमित्रा, तूने यह सब क्या चलाया है। ठीक है, तुझे गौरी के मृत्यु का रहस्य ही जानना है न। मैंने तुझे इस बात से दूर करने का पूरा प्रयास

लिया, पर तेरी जिद ही समाप्त नहीं होती। तू यहां बैठ, मैं तुझसे बहुत कुछ कहूंगा और तुझे दिखाऊंगा भी, पर सब कुछ जानकर तुझ पर जो असर होगा, उसकी जिम्मेदारी तेरी ही है। जो कुछ तुझे दिखाना है वह लेकर आता हूं, यहीं बैठ।"

यह कहकर वह ऊपर चला गया। मेरे मन में विचारों का झंझावात फूट पड़ा।

इन्द्रजीत के बोलने का क्या अर्थ है? रहस्य जानने की तेरी भूमिका तुझे भारी पड़ेगी, इसका क्या अर्थ है? मेरी इच्छा थी कि एक बार तुझे मानसिक कष्ट दिया, अब मेरे हाथों अधिक पाप न हो, इन शब्दों में क्या अर्थ ध्वनित होता है?

पाप ..अर्थात्...मेरी हत्या का पाप तो नहीं न! वह विवश होकर सदैव के लिए मेरा मुंह बन्द करना चाहता है क्या?

हे भगवान्, अब मैं क्या करूं?

इन्द्रजीत ऊपर गया है गौरी की मृत्यु का सबूत लेने अथवा मुझे मारने के लिए कोई शस्त्र लेने।

वह मुझे कैसे मारेगा? डोरी से गला घोंटकर या चाकू से। गौरी के गले पर भी तो लाल निशान था। उसने उसका प्राण डोरी से ही तो लिया होगा ..मेरा सर्वांग पसीने में भीग गया।

अब मैं यहां से कैसे निकलूं? मेरा सामान तो ऊपर है। पर घर में रुकना भी तो सम्भव नहीं है। मैंने जल्दी से जाकर बाहर का दरवाजा खोला और सीढ़ियों पर खड़ी हो गयी। रास्ते जाता हुआ कोई परिचित दिख जाए, तो उसी को बुलाने का विचार किया। अपने प्राण मुट्ठी में लेकर मैं सीढ़ियों पर खड़ी थी। इतने में ऊपर की मेढ़ी का दरवाजा जोर से बजा। मेरा दिल बैठ गया।

सुदैव से इसी समय मुझे हीराबाई बगले घर के सामने से जाती हुई दिखायी दी। इस समय तो वह मुझे देवदूत-सी लगी।

मुझे दरवाजे में खड़ी देखकर वे तुर-तुर चलते हुए मेरे पास आयी और हमेशा की तरह हंसते हुए मेरा हाथ पकड़कर कहा—

'क्यों सुमित्रा, दरवाजे में खड़ी रहकर किसकी राह देख रही है? अपने

जीजाजी की ?"

इस समय तो मुझे उनके कटाक्ष पर भी गुस्सा नहीं आया। मैंने अधीरतापूर्वक उनका हाथ पकडकर कहा—

"हीराबाई, घर ही जा रही हो न आओ न अन्दर ?"

इस जोरदार स्वागत को देखकर हीराबाई को आश्चर्य हुआ। उन्हे आनन्द भी हुआ होगा। वे अन्दर आयी।

मेरे मन मे एक दूसरा ही विचार आया।

ऊपर जाकर बैग भरते हुए हीराबाई को गौरी का सारा मामला बताया तो क्या होगा ? हीराबाई को मेरे मन का संशय ज्ञात होते ही इन्द्रजीत के विरुद्ध प्रचार का तूफान खडा हो जायेगा। समाचारपत्रों मे भी यह प्रश्न उठ खडा होगा। बन्दर के हाथ मे अगारा देने मैं निकली थी पर इन्द्रजीत के विरुद्ध ज्वालामुखी भडकाने की ही मेरी इच्छा थी। विष का इलाज विष ही है। इन्द्रजीत जैसे पापी को दड देना मेरा कर्तव्य था।

मैंने हीराबाई से कहा, "हीराबाई मैं अपना सामान लेकर एक रात के लिए अभी सगुनाबाई के पास जा रही हू। कल सुबह बम्बई वापस जाऊगी।"

"यह क्या, सुमित्रा ? अभी तुरत वापस जाना कुछ अच्छा नही है।" वे दिखावटी गुस्से से बोली।

"हीराबाई, मेरी बात सुनो। यहा से जाने के पहले मुझे तुमसे कुछ कहना है।"

"सही मे। ठीक है, ठीक है, मुझे आज काफी समय है। तू मुझस दिल खोलकर बात कर। तेरी कोई गुप्त बात होगी, तो मैं किसी के सामने नही कहूगी। समाज का काम करनेवाले व्यक्ति को लाखो गुप्त बातें पेट मे रखनी पडती हैं।"

मैंने मन मे कहा—यह हीराबाई किसी बात को गुप्त रख सकती है ? यह तो जीवित फूटा घडा है। उस घर से बाहर निकलने के दस मिनट मे ही यह गुप्त बात सारे गाव मे फैल जायेगी। मैं हीराबाई को पहचानती थी। मैं जो कर रही थी, वह ठीक नही था, पर क्या खून करना ठीक था ? हीराबाई का अवगुण ही आज मेरे लिए गुण बनने वाला था।

मैंने उनसे कहा, "हीराबाई, अपने ऊपर कमरे मे चलें।"

"ठीक है। पर उससे पहले मुझे अपना बाथरूम दिखाओ।" ऊपर लाकर मैंने उन्हे बाथरूम दिखाया। उनके घर मे रहने अब मेरा डर कम हो गया था। हीराबाई को देखकर तो इन्द्रजीत घबरा ही जायेगा।

मैंने इन्द्रजीत के कमरे की आहट ली। वह वहा नहीं था। गौरी के कमरे म तो ताला ही लगा हुआ था। सहज ही मेरा ध्यान ऊपर की मेढी की ओर गया। उसका दरवाजा खुला हुआ था।

वह ऊपर क्यो गया? गौरी को भी तो उसने वही से जाकर मारा था। अब क्या मेरा प्राण लेने की तैयारी कर रहा था? डरे हुए खरगोश की तरह मैं अपने कमरे मे घुस गयी और हीराबाई के बाथरूम मे निकलने की राह देखने लगी।

और मेरा ध्यान एकदम पलग की ओर गया मेरे पलग पर 'भाव-तरग' पडी थी।

गौरी के मरने से पूर्व जो कुछ हुआ था, वही सब हो रहा था।

११

मन्त्रमुग्ध-सी मैं पलग की ओर गयी। कोल्हापुर आने के बाद से ही मैं यह पुस्तक ढूढ रही थी। यह अचानक मेरे पलग पर कैसे आयी? इन्द्रजीत ने उसे वहा क्यो रखा? मेरे जीवन को अनेक बार तरगित करने वाली इस पुस्तक म कौन-सा रहस्य छिपा था ?

मैंने पुस्तक उठायी। इस समय पुस्तक मे निशानी के लिए एक पेंसिल रखी थी। मैंने वह पृष्ठ खोला।

मुझे पुन एक धक्का लगा। इस पृष्ठ की कविता की पक्तियो के नीचे हरी स्याही स निशान लगे हुए थे। साफ था कि गौरी ने ही यह निशान लगाये होंगे। शीतोपचार कविता की ही ये पक्तिया थी जो दूसरे पृष्ठ पर आ गयी थी। उस दिन मैंने कविता आधी ही पढी थी। अधोरेखित पक्तिया मैं पढने लगी—

"अकेलेपन की आग मन में भड़क रही है,
इसका ताप सहन नहीं हो रहा वेदना की सीमा है
इस ताप का शीतोपचार कहीं है क्या
मृत्यु का बर्फीला स्पर्श ही है एक उपचार
....
आत्मघात के पाप का नहीं है मुझे कोई खेद !"

ये पंक्तियां पढ़कर मेरी आंखें फैल गयीं। मन के अन्धकार पर सत्य का एक प्रकाश पड़ा।

गौरी ने आत्महत्या की थी !

अर्थात्—अर्थात् इन्द्रजीत निरपराध था !

मुझे यह समझाने के लिए ही उसने 'भाव तरंग' की इस कविता का उपयोग किया था। पर मैं पागल की तरह इन्द्रजीत पर सन्देह कर रही थी। उसने कई बार कहने का प्रयास भी किया था कि उसने गौरी से शादी क्यों की? बाद में दोनों में दुराव क्यों उत्पन्न हुआ? विवाह के बाद भी मुझे इन्द्रजीत भूल क्यों नहीं पाया? पर मैंने उसे अपराधी समझकर उसकी बात ही नहीं सुनी। जिस इन्द्रजीत को मैंने प्राणों से भी अधिक प्यार दिया था, उसे मैं पराकाष्ठा का खलपुरुष क्यों मानने लगी? मुझे स्वयं पर लज्जा आ रही थी। हीराबाई से तो कुछ कहने का प्रश्न ही नहीं रहा था।

मेरे कमरे में आकर आराम से बैठने की तैयारी करते हुए वे बोलीं—"हां, बोल, क्या कह रही थी?"

मैंने मुंह भटकाकर कहा, "यही कहना था कि तुम्हारे मन में कई दिनों से जो गलतफहमी है, उसे निकाल दो। इन्द्रजीत ने गौरी से विवाह करके मुझे कोई धोखा नहीं दिया।"

"बस? इतना ही? यह तो तू मुझसे पहले भी कह चुकी थी।" वे बहुत निराश दिखाई दीं। उन्हें गुस्सा भी आया होगा क्योंकि वे आगे बोलीं—"जैसा तू कहती है, इन्द्रजीत और गौरी का प्रेम-विवाह हुआ था, तो फिर उनमें अनबन क्यों थी? गौरी इतनी छोटी उम्र में कैसे मरी? लोग तो कहते हैं कि इन्द्रजीत के छल से तंग आकर गौरी ने आत्महत्या कर ली और डॉ० प्रधान और प्रोसीक्यूटर सालवेकर ने इस प्रकरण को

अन्दर-ही-अन्दर दबा दिया। मैं समझी थी कि इस बारे में तू और अधिक बतायेगी।"

"हीराबाई, लोग अगर ऐसा कहते हैं, तो वे मूर्ख हैं। तुम सामाजिक कार्यकर्त्ता हो, ऐसी गैर-जिम्मेदार अफवाहों को क्यों नहीं रोकती ?"

मेरी बात सुनकर हीराबाई गुस्से से बडबडाते हुए कि 'मेरा समय बेकार गया', घर से बाहर निकल गयी। मैंने उन्हें नहीं रोका।

हीराबाई के जाने के बाद दरवाजा बन्द करके मैं पुनः ऊपर आयी। इन्द्रजीत अब भी मेढी पर था। मैंने उसे जोर से आवाज दी—"इन्द्रजीत तू अभी तक क्या कर रहा है ? मैं कब से राह देख रही हूं।"

वह मढी के दरवाजे में आया और बोला, "तू घर पर ही है ? मैं तो पांच मिनट पहले ही नीचे आया था और तुझे न देखकर समझा कि तू मेरी बात सुने बिना ही चली गयी।"

उसकी बात सुन कर मुझे स्वयं पर क्रोध आ रहा था। इन्द्रजीत पर मैंने इतना घृणित सन्देह किया, यह मेरी ही गलती थी। वह अपराधी नहीं था उसने मुझे दुःख दिया था, इसी प्रतिशोध में मैं अन्धी हो रही थी।

इन्द्रजीत का दुखी चेहरा देखकर मैं व्याकुल हो रही थी। कहना चाहती थी—"जीतू, इतना दुःखी मत हो, वास्तविक अपराधी तो मैं ही हूं।" पर प्रत्यक्ष में उसकी ओर देखकर हंसते हुए कहा—"इन्द्रजीत, मुझे भयंकर भूख लगी है, तू रसोई घर में आयेगा क्या ? मैं अपने दोनों के लिए बेसन-भात बनाती हूं। मैं काम करती रहूंगी, तू सारा किस्सा बताते जाना।"

मेरी बात सुनकर उसने आश्चर्यपूर्वक कहा—"तू बेसन-भात बनायेगी ! अर्थात् राधा मौसी नहीं है ? वे आयी ही नहीं क्या ?"

मेरी आंखों में पानी आ गया। उसे तो यह भी पता नहीं था कि मौसी रसोईघर में नहीं है और मैंने उस पर कितनी ही तरह के सन्देह किये।

मैंने उसे राधा मौसी की चिट्ठी के बारे में बताया और नीचे जाकर रसोई की तैयारी करने लगी। मेरे व्यवहार में अकस्मात् परिवर्तन देखकर इन्द्रजीत चकरा रहा था पर मुझसे सब कुछ कहने के लिए उत्सुक भी था।

वह बोला, "पहले तुझे गौरी की मृत्यु के बारे में बताता हूं। मेरी

इच्छा है कि तेरे मन मे उसकी मौत के बारे मे कोई सन्देह न उठे। पर मेरी सावधानी का विपरीत ही परिणाम हुआ। अर्ध सत्य की अपेक्षा पूर्ण सत्य ही बताना हमेशा अच्छा रहता है इसीलिए तुझे बता रहा हू। सुमित्रा, तेरा सन्देह ठीक है। गौरी ने आत्महत्या ही की थी, वह हार्टफेल से नही मरी।"

'भावतरंग' की पक्तिया पढकर मैं यह बात समझ चुकी थी। फिर भी सुनने लगी कि इन्द्रजीत आगे क्या कहता है?

"उस दिन जो कुछ हुआ, बताता हू। मैं शाम को वर्कशॉप से घर आया। हमेशा की तरह घटी बजायी पर किसी ने दरवाजा नही खोला। अपनी ताली से दरवाजा खोलकर मैं अन्दर आया। ऊपर आकर देखता हू कि तुम दोनो ही कमरे मे नही हो। मैंने सोचा—तू बाहर गयी होगी पर गौरी कहा गयी होगी यह समझ मे नही आया।"

"मैं भी उस दोपहर मे कही जाने वाली नही थी, क्योकि गौरी का बुखार उतर गया था, फिर भी उसमे बैठने-उठने की शक्ति नही थी। पर गौरी ने ही आग्रह किया कि मैं बाई के पास जाकर आऊ। क्योंकि उसे गहरी नीद आ रही थी और वह दो-तीन घटे तक सोनेवाली थी। गौरी ने लगभग जबरदस्ती ही मुझे बाहर निकाला।"

"हा, उसे जो कुछ करना था, उसके लिए एकान्त चाहिए ही था। उसे ढूढते समय मुझे पलग पर 'भावतरंग' पुस्तक दिखायी दी। उसमे एक चिट्ठी भी थी। यही वह चिट्ठी है, पढ।"

मैं चिट्ठी हाथ मे लेकर पढने लगी—

"इन्द्रजीत, मैंने तेरा और दीदी का अक्षम्य अपराध किया है। मेरे अपराध की सजा या दण्ड आज मैं स्वय अपने हाथो से स्वीकार करूगी। दीदी ने मुझे क्षमा किया है। हो सके तो तू भी क्षमा कर देना। दीदी के सामने मैंने कुछ बातें स्वीकार की है, पर लज्जावश सब कुछ कहना सभव नही हुआ। बाद में तू ही उसको सब बता देना। वह समझ जायेगी कि अपराध मेरा ही था। तुम दोनो की राह मे मैं स्वय दूर जा रही हू। मेरे मरने की सारी जवाबदारी मेरी ही है। मुझे किसी के प्रति राग नही है। मेरे जाने के बाद तू और दीदी शादी कर लेना। तुम्हारी शादी हुए बिना मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। मेरा मरण तभी सार्थक होगा। 'भावतरंग' की

एक कविता की कुछ पंक्तियों को मैंने रेखांकित किया है। उन्हें पढ़कर तुम दोनो इस पगली गौरी की मनस्थिति ठीक समझ सकोगे। —गौरी।"

चिट्ठी पढ़कर मैं सिसक पड़ी। इन्द्रजीत की आंखें भी गीली हो गयी। वह स्वयं को सम्हालता हुआ आगे बोला, "मैंने वह चिट्ठी पढ़ी और घबरा गया। मुझे वह घर पर दिखायी नहीं दे रही थी। इसलिए और भी अधिक घबरा गया। वह बाहर जाकर किसी गाड़ी से तो नहीं कटी होगी या ऊपर की छत से नीचे तो नहीं कूद पड़ी होगी। ऐसा हुआ होगा, तो चारों ओर बात फैल जायेगी, मैं इसी कल्पना से थरथरा उठा। इससे तुझे, मुझे और घर के सभी लोगों को अतिशय मनस्ताप होगा। क्षण-भर के लिए मेरे हाथ-पांव भी शून्य हो गये। मैंने नीचे के आंगन में देखा। बाद में सहज ही ऊपर मेडी के दरवाजे की ओर दृष्टि गयी। मुझे दरवाजा खुला दिखायी दिया। लड़खड़ाते पैरों से ऊपर जाकर देखा तो गौरी वहीं दिखायी दी। उसने स्वयं को फांसी लगा ली थी

"मुझसे उसकी ओर देखा नहीं जा रहा था। मुझे लगा कि इस आत्म-हत्या के लिए थोड़ा बहुत मैं भी जिम्मेदार हूं। मन पर नियन्त्रण करके सोचा कि लोगों को और विशेषकर तुझे पता नहीं चले कि गौरी ने आत्म-हत्या की है। तेरे आने से पूर्व ही कुछ करने का मैंने सोचा।

"इसीलिए मैंने मन को कठोर किया और किसी तरह गौरी को फांसी से नीचे उतारा। डोरी का गोला बनाकर वहीं एक ट्रंक में रख दिया। मैं गौरी का अचेतन शरीर उठाकर नीचे ला रहा था कि तू मुझे दिखायी दी। कल्पना कर मेरी क्या हालत हुई होगी। तू गौरी के निकट आयेगी, तो अनर्थ हो जायेगा, यह समझकर मैंने तुझे फोन करने के लिए कर्णिक के यहां भेज दिया। इसी बीच मैंने गौरी को कमरे में पलंग पर लिटाकर ढक दिया। उसके खुले हुए नेत्र बन्द कर दिये। उसके गले पर डोरी का गहरा लाल निशान था, वह भी मैंने ठीक तरह से ढक दिया।

"सुदैव से प्रधान काका तुझे कर्णिक के यहां ही मिल गये। मैंने उन्हें इशारा किया और निकट आने पर उनके कान में कहा—'गौरी ने फांसी लगाकर आत्महत्या की है, यह सुमित्रा को पता न चलने देना।' उन्होंने मेरी मदद की। गरम पानी के लिए तुझे नीचे भेज दिया। तेरे ऊपर आने

तक हमने चर्चा की कि आगे क्या करना है। मेरी तरह प्रधान काका भी नही चाहते थे कि आत्महत्या की वात फैले, इसीलिए उन्होने तुझसे कहा कि गौरी हृदय गति रुकने से मरी है। सभी से गौरी की आत्महत्या की बात छिपायी, पर अण्णा साहब को सही बात बताने का निर्णय लिया। आत्म-हत्या की घटना मे पोस्टमार्टम भी होता है। किन्तु सरकारी डॉक्टर होने से प्रधान काका तथा सालवेकर काका ने अपने अधिकार के बल पर इसे टाल दिया। सारा प्रकरण शांति से निपट गया। प्रधान काका ने मृत्यु प्रमाणपत्र गलत नही दिया। उसमे गौरी की आत्महत्या की ही बात का उल्लेख है।

"मैं तुझे यह सब कुछ कभी नही बताता, पर तू कुछ अर्धसत्य जान-कर अधिक ही दुखी हो रही है, यह देखकर मैंने अपना विचार बदल दिया। तू गौरी की मृत्यु का रहस्य जानना चाहती है और उसके लिए जिद कर रही है, यह देखने के बाद मेरा चुप बैठना असभव हो गया। मैं तो तेरे हित में ही सारी बात घुमाना चाहता था। पर परिणाम विपरीत ही दिखायी दिया।

"अब तुझसे कुछ भी नही छिपाना। यह निर्णय करके ही मै एकदम घर आया। तुझे नीचे रुकने का कहकर मैं ऊपर गया। अपनी अलमारी में रखी हुई 'भावतरग' पुस्तक निकालकर उसकी शीतोपचार कविता की रेखांकित पक्तिया तुझे दिखाना था। उस पृष्ठ पर पेंसिल रखकर मैंने पुस्तक तेरे बिस्तर पर रखी। गौरी का अंतिम पत्र और डोरी लेने के लिए मैं ऊपर गया। जिसमे ये चीजें रखी थी उसके ट्रक के ताले की चाबी ही नही मिल रही थी। इसलिए ताला तोडना पड़ा। मैं दोनो चीजें लेकर नीचे आया, पर तू वहीं नहीं थी। समझा मेरी बात सुने बिना तू घर से निकल गयी, इससे मैं भयकर निराश हो गया था। पर अच्छा हुआ कि तू रुकी। यही है गौरी की मृत्यु का रहस्य।"

"इन्द्रजीत, मुझे वास्तविकता का पता लगा यही अच्छा रहा। मैंने उस दिन गौरी के पलग पर एक पुस्तक पडी हुई देखी थी और वह कविता पढ़ी भी..."

"कविता पढ़ी? उसी दिन? फिर तो समझ गयी होगी कि गौरी ने आत्महत्या की। और इसीलिए तुझे हार्टफेल की बात सही नहीं लगी।" मैंने गर्दन झुका ली। उस दिन मैंने कविता आधी ही पढी थी। अब इन्द्रजीत

को कैसे बताऊ कि मेरा सन्देह यह था कि इन्द्रजीत ने ही गौरी की हत्या की है। मैंने नीचे देखते हुए कहा—

"मैंने केवल वह कविता पढी थी। गौरी की चिट्ठी नही पढी थी। इसीलिए आधी बात समझ मे आयी थी और बेचैन हो गयी थी।"

"अब तो तुझसे एक ही रहस्य छिपा है कि मैंने गौरी से विवाह क्यों और किन परिस्थितियों मे किया।"

"अब वह भी कह डाल।"

"नही, सुमित्रा, कहने का उपयोग भी क्या होगा, क्योकि मुझे लगता है कि तू मुझे कभी क्षमा करने वाली नही है।"

"गुस्से मे आकर मैंने तुझसे बहुत दुर्व्यवहार किया, पर इन्द्रजीत, तू उसका बुरा मत मान।"

"मुझ पर गुस्सा करने का पूरा अधिकार है सुमित्रा और तुझसे कोई गलती नही हुई है।"

अपनी आखो के आसू उससे छिपाने के लिए दूसरी ओर देखते हुए मैंने उससे कहा—

"मुझे लगता है कि हम पहले भोजन कर लें। भोजन के बाद या भोजनकरते-करते मुझे सारा किस्सा बता, कुछ छिपाकर न रख।"

मैं उठी और टेबुल पर प्लेटें रखने लगी।

१२

हम दोनो चुपचाप भोजन कर रहे थे।

भोजन के बाद ही बात करने का उसका प्रस्ताव मैंने मान लिया था।

मैंने केवल बेसन-भात बनाया था। इन्द्रजीत जी भरकर उसकी तारीफ कर रहा था।

मुझे पुन स्वय पर लज्जा हो आयी।

सुबह उसने मुझे बढिया चाय बनाकर पिलायी थी। पर उसकी तारीफ करने की अपेक्षा मैंने उसे क्लेश पहुचाया।

भोजन के बाद हॉल मे आकर हम आमने-सामने बैठे। उसने बताना

शुरू किया कि गौरी से उसने विवाह क्यों किया ? कैसे किया ? वह बोला—

'सुमित्रा, तुझे याद होगा एक बार गौरी को छोडकर हम सब पूर्णिमा के मेले मे हरिपुर गये थे । वहा अपना झगडा हो गया था ।"

'हा, स्मरण है । वही तो अपनी आखिरी मुलाकात थी । इन्द्रजीत उस रात तूने जो कुछ कहा गम्भीरता के साथ कहा था क्या ? मुझे तो तेरी बातें, तेरी जिद—सभी एक छोटे बच्चे की तरह लग रही थी । देखा जाये तो वह झगडा बिलकुल मामूली था । मैंने कई बार सोचा कि उसे समाप्त करू, पर स्वाभिमान बीच मे आता रहा । बाद मे अवसर ही नही मिला ।"

"उसका कारण गौरी है । पर सारा दोष उसी को क्यो दू ? मैं कैसे अस्वीकार करू कि मैंने गौरी को हम दोनो के बीच आने दिया ?"

"पर गौरी ने ऐसा क्या किया ?"

"आग मे तेल डाला । दु ख इसी बात का है कि उस आग की लपट मे हम दोनो की अपेक्षा गौरी ही अधिक झुलसी । सुमित्रा, एक बात बता, तूने गौरी स कहा था क्या कि तुझे मेरे पुरुषत्व पर ही सदेह है ।"

"छि , कैसी बात करते हो ?"

'पर गौरी ने मुझसे यही कहा ।'

"हा, ध्यान मे आया । तूने मेरे बम्बई जाने तथा वहा के पुरुषो के मोहजाल मे फसने के बारे म शका प्रकट की थी । मैंने गौरी स कहा था कि तू बच्चो की तरह बात करता है । वह भी उसन पूछा था इसलिए अन्यथा स्वय उसमे बात क्यो करती । अपने झगडे के बाद तू एक बार हम दोनो को महाद्वार रोड पर मिला । उस समय ही गौरी समझ गयी कि हम दोनो आपस म नही बोलते । उस समय गौरी ने झगडे का कारण पूछा था । मेरी बात सुनकर उसने कहा था—सुमित्रा, तू बहुत अशिष्ट है । इन्द्रजीत जैसे पुरुष से इस प्रकार नही बोलना चाहिए । उस समय मैंने गुस्से मे ही उत्तर दिया था कि इन्द्रजीत बच्चो की तरह बात करता है । मैं उसे पुरुष कहने के लिए तैयार नही हू । मेरी बात का गौरी ने गलत अर्थ लिया होगा इसकी मुझे क्या कल्पना ? पर तूने गौरी के शब्दो पर विश्वास कैसे किया ? क्या इस छोटे-से कारण से तू मुझ पर प्रेम तथा वचन सभी कुछ भूल गया ?"

"नही, ऐसा नही है। तुझे सब कुछ बताता हू। बताते हुए लज्जा आती है, फिर भी बताता हू।"

वह थोडी देर रुका। फिर ठडी सास लेकर बोला—

"अपने दोनो के बीच झगडे को निपटाने के लिए मैं भी उत्सुक था। मैं भी समझता था कि तेरे बम्बई जाने के लिए जो कारण मैंने दिये, वे बचकाने थे। तू उसमें निहित उद्देश्य नही समझ सकी थी, इसी का मुझे दुख था। तू बम्बई जा रही थी—मुझसे दूर। इसी वियोग की कल्पना से ही मैं दुखी हो रहा था। मेरी इच्छा थी कि हम तुरन्त विवाह कर लें पर तू तैयार नही थी। मुझे इसका भी आश्चर्य था कि मेरी कर्तृत्व-शक्ति पर तुझे पूरा विश्वास नही है। मुझे तो यह कल्पना ही अपमानास्पद लग रही थी कि तू नौकरी करके अपनी गृहस्थी को सहारा देगी। इस पर भी समझौते का हाथ पकडने के लिए मैं उत्सुक था। उस दिन महाद्वार रोड पर जब हम मिले तो तू मुह फिराकर खडी हो गयी थी। यह सही है न ?"

"वाह ! तू केवल गौरी से बात कर रहा था, इसलिए मैं रुष्ट थी।"

"यह साधारण गलतफहमी ही तो हम दोनो के लिए भारी पडी। कितना सही है—छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ती। तुझसे और गौरी से भेंट के दूसरे दिन मेरा मूड बहुत खराब था। मैं दुखी भी था। तेरे ऊपर गुस्सा भी आ रहा था। सब कुछ भूलने के लिए मैं शराब पीने लगा। दोपहर मे ही पीना शुरू किया पर नशे के साथ साथ ही मस्तिष्क का तूफान बढता ही गया।

"उसी शाम गौरी मेरे पास आयी। मैं घर पर अकेला था। मैं भयकर चिढा हुआ था। गौरी ने कहा—'सुमित्रा के लिए तडपना मूर्खता है। वह तुझसे प्रेम नही करती, अन्यथा तेरे पुरुषत्व पर शका क्यो करती ?' उसकी बातें सुनकर मैं होशोहवास खो बैठा। उसी को सुमित्रा समझकर गालिया देने लगा। इस पर गौरी ने मेरे गले मे हाथ डालकर कहा, 'इन्द्रजीत, यह तो मैं गौरी हू, सुमित्रा नही। सुमित्रा तेरा मूल्य नही समझती। मैं तो समझती हू। मैं तुझसे प्रेम करती हू—बचपन से ही। मुझे तो विश्वास है कि तू पूरा पुरुष है।' मैं शराब के नशे मे था। उसके आलिंगन से मेरा सन्तुलन बिगड गया। मैंने कहा, 'अभी दिखाता हू मैं पुरुष हू या नहीं'

श्रौर उससे . उससे ..माफ कर, सुमित्रा, आगे की बात कहने मे भी शरम आती है।"

"जब मेरा नशा कम हुआ, गौरी मेरे बिस्तर पर थी। दोनो को ही कपडो तक का भान नही था। यह देखकर मैं बुरी तरह घबराया। मैंने उससे पूछा—गौरी, तू यहा कैसे ? यह सब क्या है ? यह पूछते ही वह तो सिसक-सिसककर रोने लगी। कहने लगी—मैंने शराब पीकर उसका कौमार्य भग किया है। मेरे तो पसीना छूट गया। सारा नशा हवा हो गया। नशे मे ही क्यो न हो, जो कुछ हुआ, उससे मैं इनकार नही कर सकता था। मैं समझ नही पा रहा था कि मैं क्या कर बैठा ? अब मैं अपनी सुम्मी को मुह कैसे दिखाऊगा। वह पहले ही मुझसे नाराज है और अब तो कभी क्षमा नही करेगी। अब मैं सुम्मी से प्रेम और विवाह के लायक नही रहा। मैंने स्वय को बहुत धिक्कारा। गौरी तो मुझे ही दोष दे रही थी। रात अधिक हो गयी थी। मैंने किसी तरह गौरी को तुम्हारे घर छोडा और वापस आकर रोता रहा।"

सारी बात सुनकर मैं गम्भीर हो गयी। मुझे वह रात याद आयी। गौरी देर से घर आयी थी। उसके बाल बिखरे हुए थे...कुकुम फैला हुआ था।

वह झूठ भी बोली। झूठ सामने भी आ गया था। पर उसी शाम को गौरी ने इन्द्रजीत से विवाह कर लिया था।

मुझे सब कुछ याद आ गया। उत्सुक होकर आगे की बात सुनने लगी।

'मेरी उस हताश अवस्था मे गौरी रोज घर आती और कहती—मैंने उसका कौमार्य लूटा है, अत मुझे उससे विवाह कर लेना चाहिए। मैं समझता था कि मैंने गलती की है, पर गौरी से विवाह की बात दिमाग मे नहीं बैठ रही थी। तेरे प्रेम को मैं खो चुका हू, यह मानते हुए भी मुझे लगता था कि गौरी से विवाह एक भयकर भूल होगी। मेरा मन पश्चाताप से भरा हुआ था, पर गौरी अपना हठ नहीं छोड रही थी। मैंने उसे कई बार साफ़ बता दिया था कि मैं उससे प्रेम नही करता, पर वह सुनती ही नही थी—'तेरे अत्याचार के कारण मुझे गर्भ रह गया, तो मैं लोगो से क्या कहूगी ? मा और अण्णा के सामने कैसे जाऊगी ? यदि तूने मुझसे शादी

नही की तो मैं जहर पी लूगी।'

"एक सम्बन्ध से गर्म सिनेमा की कहानियो मे ही रहता है, यह हम बाद मे समझे। यदि मैं गौरी से साफ इनकार कर देता या गर्म रहने का विश्वास होने तक हम रुक पाते, तो यह अनर्थ टल जाता। गौरी आज जीवित रहती—किसी योग्य वर से उसकी शादी भी हो जाती। पर मैंने उससे विवाह कर लिया। इस सारहीन विवाह का परिणाम गौरी की आत्महत्या हुआ। इसका उत्तरदायित्व उस पर भी है मुझ पर भी।

"उस समय की निराशा एव पागलपन मे मुझे लगा कि उससे विवाह के अलावा दूसरा रास्ता नही है। अपने पाप की आजीवन सजा के रूप मे मुझे विवाह स्वीकार करना चाहिए। विवाह के बाद शराब ही मेरे सुख के क्षण रही। मैं अपना अधिक-से-अधिक समय वर्कशॉप मे बिताने लगा। अपने व्यवसाय को यशस्वी करने पर ही मैंने ध्यान केन्द्रित कर लिया। मैं अपने सन्तोष के लिए ही सिद्ध करना चाहता था कि मैं कर्तृत्ववान हू—पुरुष हू। पर चौबीस घटे वर्कशाप मे तो नही बीत सकते थे। खाने और सोने के लिए घर आना ही पड़ता था। उस समय शराब ही मेरी सहचरी बनती थी। गौरी और मैं तो नाम-मात्र के पति-पत्नी थे। जब मैं नशे म होता, तब ही वह स्वय मेरे गले पड़ती थी। नशे मे मैं उसे सुम्मी ही समझता—सुम्मी ही पुकारता। इसस वह बहुत चिढती थी पर मैं क्या करता? मैंने उससे विवाह किया था—उस अन्न वस्त्र की सुविधाए दी थी—एक बच्चा भी दिया। सारी कहानी ही दुखभरी है ..

"गौरी के आत्महत्या करने के बाद ही मेरी आखें खुली। उस दिन स मैंने शराब को छुआ तक नही है। बाद मे गौरी भी अपनी भूल समझ गयी थी कि मैं उसस कभी प्रेम नही कर सकता। वह हताश हो गयी थी। सुमित्रा, मैंने अपने जीवन मे बहुत गलतिया की। पहले मैंने तुझे क्लेश पहुचाया, फिर गौरी की आत्महत्या का भी निमित्त बना। गौरी तो स्वभाव से ही अल्हड व अविचारी थी। कुछ भी हो, मुझ पर उसका सच्चा प्रेम था। मैं समझदार और गम्भीर होता, तो उसे बचा सकता था। मैंने तुम दोनो को बहुत दुख दिया। सुमित्रा, तूने गौरी को क्षमा कर दिया। मुझे भी क्षमा

कर सकेगी क्या ? पर मुझे क्षमा मागने का भी अधिकार कहा है ?"

इन्द्रजीत से वास्तविकता सुनते-सुनते मेरा सदेह धीरे-धीरे शान्त होता गया। अन्त मे तो इन्द्रजीत का गला भर आया था और मेरे आसुओ का वेग भी नही रुक पा रहा था। 'मुझे क्षमा मागने का अधिकार कहा !' यह कहते हुए भी वह मेरी ओर क्षमा-याचना भरी दृष्टि से देख रहा था। पर वास्तव मे तो मुझे उससे क्षमा मागनी थी। जिससे अतर्मन से प्रेम किया, उसी को मैंने खूनी समझकर भारी अन्याय किया था। वह अपनी भूलो की कहानी कहकर मुक्त हो गया था, पर मैं अपनी गलती स्वीकार नही कर पायी थी।

मुझे अपनी भूल सुधारने का एक ही रास्ता दिखायी दे रहा था। मैंने उससे कहा—

"जो गलती नही करता उसे परमेश्वर कहते हैं। पर गलतिया सुधारी भी जा सकती हैं। अपने हाथो हुई गलतिया हम ही तो ठीक कर सकेंगे।

"अपने नही—मेरे हाथो से गलतिया मैंने ही तो की हैं।"

"यह कहकर तू और भी बडी भूल कर रहा है। तूने गौरी से विवाह किया, तो भी मैं तुझे कभी भूल नही सकी। तू मेरा ही है। सर्वस्वी मेरा। तेरी गलतिया भी मेरी ही है। मेरे लिए तू ही मेरा पुरुषोत्तम है। तेरे बिना सुम्मी कितनी अपूर्ण है जीतू, तुझे कैसे बताऊ ?"

मैंने स्वय होकर उससे जीतू कहा। उसकी गीली आखें हर्ष मे चमक उठी। उसने अपनी बाहें फैलायी और मैं दौडकर उनमे समा गयी। उसके निकट स्पर्श मे मैं रोमाचित हो उठी। हमारे हृदय निकट आकर एक लय मे चल रहे थे और उस मदमस्त लय मे हमारी सारी शकाए और दु ख विलीन होते जा रहे थे।

यह स्वप्न था या सत्य ?

सत्य और स्वप्न एक ही सीमा-रेखा मे आकर आपस मे लीन हो गये थे।

मेरे मन मे आया—

मेरे मन का रग इस समय कैसा है ?

अनुराग का गुलाबी ?

मन का रग /

या स्वप्नों ने मेरे मन पर चंदेरी-सुनहरी रंग चढ़ाया है ?

चंदेरी जरी-बूटी वाली गुलाबी रंग की साडी पहने मुझे एक सलज्ज, सस्मित नववधू दिखाई दी !

वह नववधू मैं ही नहीं थी क्या ?

शार्टकट/नयना आचार्य

1

१

मैं ससार में आयी—अनचाही, अनपेक्षित-सी। कई महीनों तक तो मेरा नामकरण भी नहीं हुआ। सबमे बड़ी तीन बहनों को बड़ा लाड़-प्यार-दुलार और मैं उपेक्षित!

सन्तान तो मा-बाप के प्रेम का ही फल होती है, पर बड़ी दीदी पर उनका बहुत ही प्रेम था। वह मा-बाबा की विवाह-पूर्व प्रणयाराधना की बसत बहार का फूल थी। उसी के कारण तो मा से बाबा का प्रेम-विवाह सम्भव हुआ था।

बाबा बैंक के एक साधारण क्लर्क थे। मा बताती हैं कि वे बहुत सुन्दर और आकर्षक थे। सात बच्चो का बोझ उठाकर, छह लड़कियों का विवाह करके और जीवन-भर बैंक की उबाऊ नौकरी करते हुए, वे आज भी देखने लायक ही हैं। उनकी ऊची तनी गर्दन, तीखी नाक और सुन्दर दन्तपंक्ति उन्हें इस उम्र में भी सामान्य से ऊपर रखती है।

बस्ती के उन दिनों में खेती की अपेक्षा बैंक की नौकरी ही लुभावनी लगती थी। मैट्रिक की परीक्षा पास करने वालों का तो बड़ा सम्मान था। बाबा रूप और सम्मान दोनों में 'ए-वन' थे। वे बैंक से निकलते, तो लड़कियां उनकी ओर देखती ही रह जाती। कई उनको आकर्षित करने के लिए प्रयत्नशील रहतीं।

मेरी सीधी-सादी सुन्दर मा ने भी उन पर जाल फेंका। वह बहुत ही सुन्दर थी। बाबा उसके सुनहरे जाल में अनजाने ही फंस गये और फिर धसते ही गये। घर में मा पर पहरा शुरू हो गया। फिर भी वह बाबा के साथ सिनेमा, होटल, उद्यान, प्रणयकुंज—सभी स्थानों पर खूब घूमी। बाबा के कमरे पर भी रहकर आयी।

मा और बाबा दोनो के माता-पिताओ ने कई प्रतिबन्ध लगाये, पहरे बिठाये, डर दिखाया, तो भी जो कुछ होना था हो गया। उसका परिणाम दिखाई देने लगा। बाबा ने उसे आलंदी ले आकर विवाह कर लिया। बड़ी दीदी के जन्म का दोनो ने अपूर्व स्वागत किया। विवाह के पाच महीने के बाद की ही बात है। दादी तो अब तक नाक-भौं सिकोड़कर इसकी कहानी बताती है।

मा-बाबा ने उपन्यास एव काव्य वर्णित प्रेम किया। बाबा ने 'गोरा' उपन्यास पढकर मा का नाम सुचरिता रखा। फिर तो बच्चो के नाम भी 'सु' से प्रारम्भ होकर 'ता' पर समाप्त होने लगे। बड़ी दीदी का नाम सुजाता रखा, उससे छोटी का नाम सुनीता बाद मे दोनो ही उत्कठा सहित लडके की राह देखने लगे। 'सु' अक्षर पर उसका नाम भी ढूढकर रखा, पर जन्म हुआ लडकी का। मा ने उसका नाम सुचेता रखा।

अब बडे-बूढे भी कहने लगे कि तीन लडकियो पर लडका अच्छा नही रहता, अत एक लडकी और होनी चाहिए, लेकिन मा ने बाबा से साफ कहा—

"इन तीनो पर लडका होगा, तो ही अच्छा है। हम गृह-शाति कर लेंगे, पर इस यातना से एक बार मुझे छुट्टी तो मिलेगी। हमने प्रेम तो लग्न से पूर्व ही किया था और अब यह बोझ! न तो मैं तुम्हें सुख-सहवास दे सकती और न ही सवा कर सकती हू।"

कहते-कहते मा की आखें भर आयी। दीदी चद्दर ओढकर सब सुन रही थी। उसी ने मुझे बताया—

"बाबा ने मा को पास खीचते हुए कहा—तू क्यो व्याकुल होती है! अपना प्रेम ऊपरी नही है। सारा दायित्व सम्हालकर भी तू मेरी है, इसी का मुझे सन्तोष है।"

उनके परस्पर प्रेम और सहनशक्ति की भगवान ने परीक्षा ही ले डाली। चौथी भी लडकी ही हुई। इसका नाम भी नही रखा गया। आफिस मे भी पीठ पीछे लोग बाबा की मजाक ही करते थे—

"एक के बाद एक चार लडकिया। यह किस युग मे है? लडके की राह देखते न जाने कितनी लडकिया गले पडेंगी।"

पर यही लोग ऊपर से कहते, "ओ देशपांडे का रिजल्ट निकल आया न? पर पेड़े या जलेबी कुछ भी नहीं मिला, क्यों देशपांडे?"

कोई कहता, "डोन्टवरी, देशपांडे, बेटर लक नेक्सट टाइम।" अन्त में दादा चिढ़कर बोलते, "मेरे प्रति इतना अपनत्व क्यों उमड़ रहा है?"

"अरे, नामकरण हुआ या नहीं?"

"आदि 'सु' और अन्त 'ता' का बंगाली, गुजराती कोई नाम नहीं मिला होगा?"

"अरे भाई, सुमाता चलेगा। बड़ी होकर वह सुमाता ही तो बनेगी।"

"शटअप बड्या ..' दादा का संयम फूट पड़ता।

"जाने दो दोस्त, सुलक्षणा रखो। सु और ता के नाम समाप्त हो गये। वंश के लिए सुलक्षणा ही अच्छा।"

आफिस की चर्चाओं के चक्कर में उन्होंने चौथी लड़की का नाम सुलक्षणा ही रखा। पांचवी आयी सुहासिनी और उसके पीछे? इस समय लोगों के तानों से विकल होकर मां ने अस्पताल में ही बाबा से कहा था—

"अब या तो तुम आपरेशन करा लो या मुझे इजाजत दे दो।"

अब तक झुकी नजरों से, मर्यादा तथा मृदुता से, बोलने वाली सुचरिता को झुंझलाते हुए देखकर बाबा भी घबरा गये। उन्होंने कोमलता से उसे थपथपाते हुए कहा—

"सुचरिता, वास्तव में मैं व्यर्थ के कष्टों का बोझ बढ़ाता ही गया। पर गलती हम दोनों की नहीं है क्या? योगायोग की ही बात है। कुल-दीपक चाहिए न? पंच कन्या पर पुत्र की आशा होती है, फिर भी तू चाहती हो, तो मैं स्वयं आपरेशन के लिए तैयार हूं।"

बाबा के करुण स्वर ने मां को पिघला दिया था और अब मेरे जन्म के बाद भी फिर से वही हाल...

कमजोरी और रक्त की कमी के कारण मां को यह प्रसूती भारी पड़ी। वह बेहोश हो गयी। होश में आने पर उसने पूछा था—"लड़का हुआ न?"

'हां' कहने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। निःश्वास लेकर मां फिर बेहोश हो गयी।

मां बिलकुल मर चुकी थी। समाचार पाकर बुआ घर पर आयी।

उसने मा की औषधि, टानिक और विश्रान्ति सख्ती के साथ चालू की।

इसी बुआ ने वर्षों बाद मेरा नाम सुप्रिया रखा था। नहीं तो दगडी, धोंडी जैसा कोई उपेक्षित-सा नाम मुझे चिपकता।

'सु' का शुभ अर्थ अभी तक नहीं निकला। इन्हीं दिनों महगाई तेजी से बढ़ी। लड़ाई और अनेक प्राकृतिक आपदाए एक के बाद एक देश पर आयीं और उसका परिणाम था महगाई।

बाबा की सहनशक्ति और अर्थार्जन दोनों ही कम होने लगे। उनके सुन्दर केश झड़ने लगे चेहरे पर झुर्रियां दिखाई देने लगीं।

मा ने उनसे कहा—"अब मैं थक गयी। बिलकुल राह नहीं देखूगी। इस प्रसूती के बाद मैं आपरेशन करान वाली थी। अतिशय कमजोरी के कारण डॉक्टरों ने मना कर दिया, पर अब...'

"मैं समझा, सुधा। मैं छुट्टी लेकर जाता हू और बम्बई में आपरेशन कराकर ही आता हू।"

मा की मुरझाई हुई देह और हाल बाबा से भी देखे नहीं जा रहे थे। किसी समय की सुन्दर और रगभरी मा का शरीर सूखा और सफेद हो गया था।

बाबा को छुट्टी तत्काल नहीं मिली। आफिस का इन्स्पेक्शन चालू था। पन्द्रह दिन बाद उन्हें छुट्टी मिली।

निकलने से पूर्व क्षणिक मोहवश ही शरीर में अकुर रह गया। मा रात-भर रोयी। बाबा गये, बम्बई से आपरेशन करवा कर आये।

शायद भगवान ने भी कसौटी देखी और प्रसन्न हुआ। इस समय लड़का ही हुआ। पूरा कुटुम्ब खुशियों से भर गया।

बाबा का कुल-दीपक आया—सुमगल। भैयादूज को ही हमारे घर में भाई आया था। मा-बाबा के चेहरों पर यौवन दौड़ आया।

चारों ओर खुशियां थीं। मैं थी केवल चौदह महीने की। उपक्षित-सी घर के एक कोने में पड़ी रही। किसी ने नहीं कहा, 'सुप्रिया की पीठ ही अच्छी थी। उसी के बाद भाई आया है।'

जब से मैं समझने लगी, उस समय से तो अच्छी-बुरी हर घटना, हर व्यक्ति मुझे याद है। मेरी स्मरणशक्ति मे हर बात लिखी है। उससे पूर्व की बातें मा और दादी बताती रही हैं। बालपन मे मेरे प्रति व्यवहार मुझे अब भी काटे-सा सालता है।

'नक्टी होना अच्छा, पर छोटी नही'। पर मैं तो सबमे छोटी। छठी! मुझ से किसे दुलार? किसे प्यार? कौन मुझे पूछे? उपेक्षित-सी किसी तरह बढ़ रही थी। सुमगल तो घर का सब-कुछ बन चुका था।

मैं दो वर्ष की थी, तब की बात है। सुमगल होते ही मा मुझसे दूर हो चुकी थी। उसी दिन मेरा पाव जल गया। जलन सहन नही हो रही थी। मैं रो रही थी। दादी तुलसी-आगन मे बैठकर चदा के गानें कौवे की कहानी कहकर मेरा मन बहला रही थी। पर मुझे अच्छा नही लग रहा था। मैं जोर-जोर से रोने लगी। मा बाहर आयी तो मैंने उससे चिपटकर कहा—

"तू मुझे गोद मे लेकर यहा बैठ। लोरी दे।"

'बेटी, अभी तो मुझे रोटिया बनानी हैं। बाबा, ताई, भाई—सभी भूख-भूख करते आ रहे होंगे। मैं रात को तुझे अपने पास सुलाऊगी, फिर तो ठीक है न?"

"झूठ! रात को तो भाई सोयेगा तेरे पास। तू अभी बैठ। रोटिया दादी बनायेगी।"

मा ने दादी की ओर देखा, पर वह तो तुलसी की मजरिया गिन रही थी। मा ने उदास मुख से मुझे देखा और उठाकर अन्दर ले गयी। उस दिन मुझे गोद मे लिटाकर ही उसने रोटिया बनायी।

मेरा दोष इतना ही नही था कि मैं छठी लडकी थी। सुजाता ताई की तरह एकदम गोरी तो क्या, अन्य बहनो की तरह उजली भी नहीं थी। एकदम सावली थी। जन्म से ही उपेक्षा और अपोषण, प्रेम का अभाव—फलस्वरूप कुढ़न का परिणाम मेरे रूप-रूप पर निश्चित हुआ था। स्कूल जाने से पहले मैं हड्डी का ढाचा और मलीन थी—परिवार मे एक ओर

बुआ कहती, 'तेरी दादी तुझे कोयले की बोरी कहती थी, पर अब कैसी लाल टमाटर दिखायी दे रही है ?"

मैं प्रथम वर्ष बड़ी फीस वाले के०जी० स्कूल में भर्ती हुई और दूसरे ही वर्ष शानदार ड्रेस पहनकर कॉन्वेन्ट जाने लगी। फूफाजी से 'हाय, अंकल ! हाउ डू यू डू !' के असली अंग्रेजी उच्चारण में बोलने लगी। वे भी मुझे उठाकर पप्पी ले लेते।

मुझे बम्बई प्रायः चार वर्ष हो गये थे, पर घर जाने का नाम नहीं लेती थी। बुआ मुझ से अगाध स्नेह करती थी। जीवन निश्चित और तृप्त था। घर की याद ही नहीं आती था।

मां दीवाली पर बुलाती, पर बम्बई की जगमगाहट और पटाखेबाजी छोड़कर मैं कहां जाती ? एक बार मां और बाबा सुमंगल को साथ लेकर आये। मुझे पहचान पाना उनको भी मुश्किल पड़ा। एक दिन मुझे नींद में जानकर मां ने दादा से कहा—

'सुप्रिया को हमेशा यहीं रहने दें। कम-से-कम एक लड़की का तो भला होगा।"

'तू ? सूची ? तू ऐसा कह रही है ?"

"बच्चा का भला होना हो, तो मन कठोर करके गोद भी तो देते हैं न ? यह भी ऐसा ही है ! और हां, इसको घर ले भी मत चलो और बुलाओ भी मत। नहीं तो सब इससे जलेंगी।"

बाबा स्तंभित से रह गये। उनको पता नहीं था कि मैं सुन रही हूं।

जब तक मां रही, मैं उसके पास सोती। बाबा को मैंने कविताएं सुनायी, गाने गाकर बताये। मुझे शाबाशी देते हुए उन्होंने कहा, "बहुत बढ़िया, सुप्रिया ! तू बहुत स्मार्ट और होशियार लड़की बन गयी है और सुन्दर भी।"

"सुन्दर !" मैं रोमांचित हो उठी। बहनों द्वारा काली, बिल्ली, डाबर, मरियल आदि अनेक नामों से दुत्कारी हुई। और सुन्दर ?

मैं दर्पण के सामने जाकर खड़ी हुई। हां, मैं सुन्दर दिखाई दे रही थी। और मेरा स्वभाव भी तो बदल गया था—प्यारा-प्यारा बन गया था।

दस-बारह दिन तो इसी तरह और रहने को मिला।

वापस जाते समय मां-बाबा ने औपचारिक आग्रह से कहा, "ताई,

बच्चों की परीक्षा होने पर घर जरूर भेजना।"

मैं मन मे बोली, "आये थे मिलने अब बुलाने की बात क्यो करते हो ?"

मैं ही भ्रम मे पड गयी थी—बुआ के घर मे सुख पाकर समझी थी कि मेरा भाग्य ही पलट गया पर...

मैंने कॉन्वेन्ट की तीसरी कक्षा पास की। उस वर्ष बाबा का स्थानान्तर एक प्राकृतिक रम्य ठडे पर्वतीय स्थान पर हो गया। उन्होंने बुआ और अक्ल को छुट्टियो मे आग्रहपूर्वक वहा बुलाया। उनकी तरक्की भी हो गयी थी तथा छह महीने के एरियर एक साथ मिले थे। उन्होंने सभी बच्चो के बढ़िया कपडे बनवाये। दादी को भी अष्ट विनायक यात्री कम्पनी की यात्रा पर भेज दिया।

इस ठडे पर्वतीय स्थल पर बाबा को एक बगले जैसा शानदार क्वार्टर भी मिला था। घर पर चपरासी भी काम करने आता था।

परीक्षा समाप्त होने पर हम सब बाबा के नये बगले म आये। घर 'हाली डे कैम्प' ही बन गया। खूब खेलना, खाना, घूमना और सोना।

ताई ने एस०एस०सी० की परीक्षा दी ही थी, इसस परिणाम निकलने तक उसके पास भी कोई काम नही था। यो हर वर्ष तो परीक्षा के बाद ही वह आगे की पढाई शुरू कर देती थी। मा कहती, वह बाबा जैसी ही थी—स्कॉलर, उत्तीर्ण होने के प्रति निश्चिन्त।

उसकी सहेलिया पूछती, "सुहा, कॉलेज का अभ्यास अभी शुरू नही किया।"

"नम्बर्स कैसे आयेंगे ? इस पर ही आगे के कोर्स का तय करूगी।" ताई हसते हुए उत्तर देती।

एक बार मेरे पूछने पर उसने कहा, "कॉलेज अपने गाव में है ही नहीं। दूसरे शहर मे जाना पडेगा। बाबा पर खर्च का बोझ बढेगा। मैं उन पर भार डालना नही चाहती, इसमे तो नौकरी ही करूगी।"

"तेरी उम्र तो अभी पन्द्रह वर्ष ही है। नौकरी कैसे मिलेगी ?"

"वह व्यवस्था कर ली है। कीर्तने बाई ट्यूशन क्लासें चलाती हैं। मैं नीचे के वर्गों को चार घटा पढाऊगी। मुझे पैसा मिलेगा।"

मुझे ताई का सरल, उदार स्वभाव बहुत अच्छा लगा। स्वय की

महत्वाकाक्षाओ से पहले उसने दादा का विचार किया था। यो भी ताई हमेशा ही अपने व्यवहार द्वारा सबको प्रसन्न रखती थी। समझा-बुझाकर बहनो के झगडे निपटाती थी।

दादी एक दिन बुआ से धीरे-धीरे बात कर रही थी। मैं छिपकर सुनने लगी—

"सुन सुमी, यह डाक्टर का गोला अब बहुत फूल गयी है। उसका लाड-प्यार बहुत हो गया। अब सुजाता को तेरी जरूरत है। वह लडकी बहुत होशियार और गुणी है। कालेज में पढ लेगी, तो कम टीके मे अच्छा घर मिल जायेगा। इस बार तू उसको ले जा। उससे बाबा का खर्च बचेगा। वह लडकी पढने मे बहुत तेज है, नम्बर अच्छे आते हैं—इसमें उसकी फीस भी नही लगेगी। घर में भी तुझे बहुत मदद मिलेगी।" दादी एक वकील की तरह ताई की पैरवी कर रही थी।

"मा, सुजाता प्यारी और गुणी लडकी है। उसको रखने मे किसी को आपत्ति नही होगी। पर पहले उनसे पूछ लू।"

"ठीक है।"

यह सब सुनकर मेरे तो होश ही गायब हो गये।

उस दिन शाम को हम घूमने जा रहे थे। सृष्टि सौन्दर्य देखने मे मग्न हो रहे थे कि पीछे से एक वाहन ने हॉर्न दिया। हम सबने पीछे देखा। एक जीप खडी थी।

बडी-बडी मूछो वाला एक आदमी जीप की आगे की सीट से उतरकर आया और उसने अक्कल की पीठ पर थाप लगायी। वे चकराये-से देखने लगे।

"अरे शरद, मुझे नही पहचाना?"

"अ? तुम...हा, तू तो सुदाम माने? हा, वही!"

"एकदम ठीक, तेरी कक्षा मे चार वर्ष था।"

"अरे, तू तो भैंसे जैसा इतना मोटा कभी था क्या? तेरी मा ने तेरा नाम सुदाम रखा—अब अपना नाम बदल दे, भीमराव रख। आजकल कहा है?"

"मैं कहा हू, क्या करता हू—चल अभी देखने! देख पास के ही गाव

मे अपनी आढत की दुकान है। आज सत्यनारायण की कथा कराई है। अभी तुम्हे गाडी मे ही ले जाऊगा। कथा से निबटकर अपन ताश जमायेंगे।"

अकल ने काफी बहाने किये, पर वह तो उन्ह जीप मे ले चलने पर तुल गये। उन्होंने सभी से सुदाम का परिचय कराया।

"भाभी आप सबको अभी ले जाना पर जीप के भीतर लोग हैं। मैं गाडी भेजूगा—आना जरूर।'

बाबा ने आगे बढकर कहा, "इनको सुबह जल्दी पहुचाना। मेरी लडकी का एस०एस०सी० का रिजल्ट कल आयेगा—मुह मीठा करने अवश्य आना।"

"वाह, बहुत बढिया। कल के लिए भी सत्यनारायण को पाच नारियल की मनौती लेता हू।"

सभी हस।

'जाता हू। सुबह जल्दी आऊगा।" कहकर अकल गाडी मे चल गय। हमारी हसी तो चलती ही रही।

यह हसी दुर्भाग्य की सूचक ही रही। हमारे लिए अकल का वही अन्तिम दर्शन था। बारह घटो बाद देखने वालो ने उनका रक्त-मास से सना शरीर ही देखा।

४

ताई का रिजल्ट आने की पूर्व रात्रि म अकल मित्रो के साथ चले गय, यह मुझे अच्छा लगा। क्योकि ताई को ले जाने के लिए बुआ आज ही उनसे बात करने वाली थी। अकल हा करत, तो मुझे फिर म घर म ही रहना पडता। ताई को तो मजा आता और मैं दादी की गालियो और बहनो के झगडो म कुढती रहती। पर सभी कुछ उलट-पुलट हो गया। कैसी विडम्बना! रिजल्ट की पूर्व रात म ताई बेचैन थी। उसे बहलाने के लिए हम रात को बहुत देर तक हसते-खेलते रहे। खूब देर स सोये। तो भी ताई ने दूसरे दिन सुबह जल्दी उठकर गणपति की पूजा की। उसी

समय तार वाला आया। ताई प्रथम श्रेणी मे पास हुई थी। पाच विषयो मे विशेष योग्यता थी। बाबा के मित्र ने बम्बई से तार दिया था।

सभी आग गये। ताई तो पहले से ही सबको प्यारी थी और आज तो उसने बाबा का नाम ऊचा किया था। बाबा ने और मा ने उसको बहुत प्यार किया। मा ने बढिया घी का हलुआ बनाया। हमने पेट भर खाया।

बुआ ने स्नान कर लिया था, पर वह कुछ खा नही रही थी। बार-बार कह रही थी, "अभी तक क्यो नही आये?"

मेरा दिल फिर बैठ गया। ताई बढिया नम्बरो स पास हुई है, इस-लिए बुआ उसको ले जायेगी क्या? मुझे यहाँ मराठी स्कूल मे जाना पडेगा नीला स्कर्ट पहनकर! छि हमारी लवेण्डर रग के कपडे की शानदार यूनिफार्म, पट्टा, टाई, बूट, स्टाकिग्स—सभी समाप्त होगे? वे फादर, वे मदर...क्या सब मेरे लिए गये?

फिर से ताई का विचार आया। उसका भला नही होना चाहिए क्या? उसे इस पन्द्रहवें वर्ष मे ही घर बैठना चाहिए या मास्टरी करनी चाहिए? अन्य बहनो की तरह ताई के बारे मे मुझे कोई द्वेष या ईर्ष्या नही थी।

एक क्षीण आशा अवश्य थी, शायद सजू हठ करेगा कि सुप्रिया को भी ले चलो क्योंकि खेलने-फिरने के लिए तो हमारी ही जोडी थी। ताई तो उसके लिए बहुत बडी थी।

बुआ बेचैन होकर छत से जीप की राह देख रही थी। दादी को भी चिन्ता हो रही थी।

"अरे मा, रात्रि-जागरण के कारण अभी तक सोये होगे। शायद उठ भी गये हो, तो भी वह भीमकाय सुदामा उठे तब न!"

दादी ने कहा, 'सुरन्द्र, तू एस० टी० से जाकर देख आ न, एक घटा ही लगेगा।"

"मा, थोडी देर रास्ता देखें, तब तक मन्दिर मे पेडे चढाकर आता हू। शरद राव कोई छोटे बालक नही है। फिर भी चला जाऊगा।"

ताई को साथ लेकर बाबा बाहर निकले। ताई ने आज स्कर्ट की जगह साडी पहनी थी। कितनी बडी लग रही थी।

बाबा वापस आये, तब तक अक्ल नही आये थे। वे सुदाम राव के लिए पेडे लेकर बस स्टॅण्ड तक गये।

एस० टी० सुदाम राव के गाव पहुची ही नही। घाट के उतार के बाद एक सीधी चढाई थी 'एस' के आकार की। वहा वाहन रुके हुए थे। कारण जानने के लिए पॅसेन्जर उतरकर आगे गये। बाबा भी आगे गये। देखते हैं कि नीचे से आ रही एक जीप और ऊपर से आनेवाले एक ट्रक की टक्कर हो गयी थी। जीप चकनाचूर हो गयी थी।

जीप का नाम सुनते ही बाबा धडधडाते हृदय से आगे दौडे। उन्होंने पुलिस से पूछा, "जीप मे कौन था ?"

"मालिक गाडी चला रहा था, वह वहा पडा है। जीप मे एक और व्यक्ति था, वह ट्रक के नीचे दबा है। अब वह क्या जिन्दा होगा ?"

लडखडाते पावो से बाबा जीप के मालिक का देखने गये। वे सुदाम राव थे। बाबा मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

स्कूल-कॉलेज शुरू हुए। दु ख के आवेग पर नियन्त्रण करके भविष्य के बारे मे सोचने का समय आया। सबने कहा कि बुआ भी सजू के साथ यही रहे, पर बुआ इस घर का भार हल्का करने के स्थान पर स्वय भार बनना नही चाहती थी। उसने बम्बई जाने का ही निर्णय लिया। दादी ताई को लेकर नही साथ जाना चाहती थी, पर मा ने दादी की बात नही चलने दी।

बुआ को अब नौकरी करनी थी, पर बम्बई मे नौकरी कहा मिलती ? मैट्रिक मे उसके नम्बर कम थे। उसने नर्स की ट्रेनिंग लेने का तय किया। अपना कम किराय का मकान अधिक भाडे पर उठाकर उसन तीन वर्ष के लिए नर्स के होस्टल मे रहने और सजू को पचगनी के बोर्डिंग स्कूल मे भेजने का तय किया। अकल के बीमे और ग्रेच्युइटी के पैसे बैंक के फिक्स्ड डिपॉजिट मे रखने का तय किया।

दु ख के इस वेग म भी बुआ ने ऐसी योजना बनायी, जिसस किसी पर भार न पडे।

"ताई, मेरे रहते हुए भी तू इस छोटे से भानजे को इतनी दूर भेज रही है ? मेरे बच्चो मे ही रहने दे। तेरी भाभी, उसका..." बाबा स बोला

नहीं जा रहा था।

"मैं जानती हूं कि पेट के बच्चे से भी अधिक स्नेह उसे मिलेगा पर..."

"पर कुछ नहीं, सजू को यहां स्नेह की छाया में ही रहने दे। तूने चार वर्ष तक सुप्रिया को रखा, अब मुझे तेरे लिए कुछ करने दे।"

"मैं हर माह सौ रुपये उसको भेजती रहूंगी।"

"ताई, मुझे शर्मिन्दा मत कर।" बाबा ने कहा।

बुआ ने पैसे नहीं भेजे, पर हर माह मा के नाम पर बैंक में जमा कराती रही, सुली के विवाह के लिए अच्छी रकम इकट्ठा करने के लिए।

मेरी प्यारी सद्गुणी ताई इस विपत्ति से व्याकुल हो गयी थी। वह कीर्तने बाई की कोचिंग क्लास में नौकरी की कोशिश करने लगी। पर प्रिंसिपल ने बाबा को बुलाकर कहा कि सुजाता को राज्य सरकार ने पचास रुपये महीने की छात्रवृत्ति स्वीकार की है। इससे उसका खर्च चल जायेगा। उसे कॉलेज भेज दो।

स्कूल में ताई का सत्कार करके उस आगे के कोर्स की पुस्तकें और सौ रुपये दिये गये। ताई ने घर आकर सत्कार का हार बाबा के पांव पर रख-कर नमस्कार किया।

"बेटी!" आंसू रोकते हुए बाबा बोले, "लड़का इससे ज्यादा क्या करता? मैंने तुझे हमेशा लड़का ही माना।"

मा ने रात-भर ताई की तैयारी की। मैंने बुआ से मिला हुआ एक बाल पेन और छह रुमाल ताई को दिए। ताई ने मेरी पप्पी ली। स्मरण आया कि घर में यही एक पहली पप्पी थी। खैर! बचपन में बम्बई जाते समय दादा ने भी एक बार पप्पी ली थी।

ताई चली गयी। हम बहनों के बीच के झगड़े निपटाने वाला कोई नहीं रहा। हम बात-बात में लड़ती। काम तथा खाने पीने तक के लिए मेरा-तेरा करती।

आज तक हम साथ थे। मैं बम्बई गयी, तब एक की कमी हुई थी, अब ताई के जाने के बाद भी सात ही रह, क्योंकि सजू यहीं था। सजू के रहने से ही यह वापसी मैं सहन कर पा रही थी।

सजू ताई के ही स्वभाव का था। ईर्ष्या-मत्सर के दुर्गुण से मूल-सी

डिप्लोमा करना था। वेतन खूब चाहिए था। पैसे में ही सब मिलता है—यही मेरी मान्यता थी।

बारह वर्ष की उम्र में मुझे जिला क्रीडा महोत्सव के लिए चुना गया। मैं स्कूल के लिए शील्ड और स्वयं के लिए दो कप जीतकर लायी।

"वाह, यह चुहिया भी ताई की तरह आगे आ गयी।" कप कांच की अलमारी में रखकर ताई ने मुझे लड्डू देते हुए कहा। बाबा ने कहा, "भगवान सबको कुछ न कुछ देता है। काली चींटी में भी लकड़ी फोड़ने की ताकत होती है। सुप्रिया, तुझ में भी गट्स हैं।"

५

मैं खेल जगत में जिले की ही नहीं, राज्य स्तर पर चमकने वाली खिलाड़ी बन चुकी थी। मेरे कप और शील्ड रखने के लिए बाबा ने एक शो केस बनवाया था। सजू के तत्त्वज्ञान को शिरोधार्य करके मैंने तेजी से प्रगति की। कक्षा में भी मुझे पचास-पचपन प्रतिशत नम्बर मिलते थे।

सुचेता ने एस०एस०सी० पास कर लिया और वह मां से साड़ियों की जिद करने लगी।

मां ने कहा, "यह नहीं जमेगा। तू तो ठिगनी है। तुझसे सुनू व सुहास तो क्या, सुप्रिया भी बड़ी दिखायी देती है। सबको साड़ियां चाहिए। उस लड़की का वेतन क्या साड़ियों में खर्च कर दूं। उसकी शादी भी करनी है। उसको कोई देखने आयेगा, तो छह-छह लड़कियां साड़ी में दिखायी देंगी। नहीं-नहीं, यह नहीं चलेगा।"

बढ़ते शरीर को क्या नहीं चाहिए? साड़ी की मांग तो रद्द हो गयी। लायब्रेरी से मुफ्त की पुस्तकें तथा सहेलियों से गंदे चित्र और सामग्री भरे मासिक पत्र प्राप्त कर पढ़ने से शरीर में अजीब सनसनी होने लगती। इससे भी प्रकट भूख तो होती थी पेट की। मेरा खिलाड़ी शरीर राक्षसी भूख से व्याकुल हो उठता था। बेडमिंटन में मेरी पार्टनर के घर पर बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें खाने को मिलती।

स्वाद बढ़ने पर पूर्ति के मार्ग भी सूझते हैं। हमारे पड़ोस मे एक रेंजर नये-नये आकर रहे। शादी को दस वर्ष हो गये थ, फिर भी उनके बच्चा नहीं हुआ था। रेंजर तो कॉलेज के तरुण जैसे ही दिखायी देते थे। पत्नी भी तरुण थी पर कृशकाय। शायद बच्चा न होने स ही चिड़चिड़ा कड़वा स्वभाव हो गया होगा। डॉक्टर के इस मत म भी खिन्न होगी कि दोष आदमी म नहीं, उसी में है। डॉक्टर की पत्नी ने ही मुझे बताया था। वे भी हमारे पड़ोसी थे।

इस रेंजर कुटुम्ब मे मेरा आना-जाना काफी था। इसी तरह डॉक्टर के बगले पर भी। रेंजरिण बाई का स्वभाव अभिमानी होन से उनके पास आने-जाने वाले कम ही थे। साथ की सभी को जरूरत होती है इसलिए रेंजरिण बाई हमेशा ही मुझे बुला लेती। मैं रोज शाम को वहा जाती थी। छुट्टी के दिन तो उनके यहा काफी समय बिताती थी। वहा जाने की उत्सुकता मे मैं मा द्वारा बताये घर के सारे काम फटाफट निपटा देती थी।

पति के शाम के नाश्त क लिए रेंजरिण बाई रोज ही बढ़िया-बढ़िया पदार्थ बनाती थी। हम भी नाश्ता करके ही घूमने निकलत। बाहर भी भेलपुरी आइसक्रीम वगैरह खाते। कभी-कभी सिनेमा भी जाते। यह बाई पड़ोसियों में, नौकरानियों म महाकजूस के नात प्रसिद्ध थी, पर मुझ पर तो वह खाने-पीने की खैरात ही कर देती थी और कहती, "अपनी पड़ोसियों को बताओ कि मैं कजूस हू या उदार" मुझे क्या ? स्कूल से आत ही कड़कड़ाती भूख लगती और वहा पहुच जाती। घूमकर आन के बाद घर पर जमकर खाना खाती।

सुचेता आकर कहती, "क्या लाड हो रही है। तीसरी मजिल खाली होती है तो शरीर फूलता ही जाता है।'

मैं हसकर उसका ताना सह लेती।

डॉक्टरिन बाई भी अच्छी ही थी। डॉक्टर साहब तो अक्षरश पैसा बटोर रहे थे। सरकारी दवाखान म एक फर्लांग लम्बी लाइन लगती थी। लाइन से घबराने वाले सुबह ही घर पर दस रुपये देकर जाच करा लेते। उनको अस्पताल में सबस पहले दवा मिल जाती। भोजन और एक घटे की विश्रान्ति छोड़कर डॉक्टर या तो विजिट पर होत या अस्पताल और घर पर

बीमारी में।

डॉक्टरिन बाई को हम नीता ताई कहते थे। घर पर हर काम के लिए नौकर, बच्चों के लिए मास्टर। नीता ताई को समय व्यतीत करना भारी पड़ता था। रेंजरिण बाई से बचा समय मैं उनको देती थी। उनके साथ भी ताश-नाटक-सिनेमा के प्रोग्राम। ताई का फ्रिज बम्बई से मंगाई बढ़िया मिठाइयों, फलों और खाद्यपदार्थों से भरा रहता। वे रोज ही मुझे कुछ-न-कुछ देतीं। मेवे भी खूब खिलातीं। ताई मांसाहारी थीं। प्रारम्भ में ग्रामलेट, पुडिंग आदि खिलाकर दो-तीन वर्ष में उन्होंने मुझे मटन, कीमा आदि का स्वाद भी लगा दिया। घर-कार्य और व्यायाम से मुझे सब पच जाता था। इस खुराक से मैं खूब मोटी हो गयी।

रेंजरिण बाई और नीता ताई के साथ के कार्यक्रमों को मैं घर से छिपाकर रखती थी। मां-बाबा को सात जनों की और बारीकी से ध्यान देने का समय ही कहां था। मैं घर का काम हुज्जत-बिना और तेजी से करके निकल जाती, यही उनके लिए बहुत था। डॉक्टर और रेंजर के घरों के बारे में उन्हें विश्वास भी था।

निरोगी शरीर को काम, व्यायाम और खुराक ही पर्याप्त नहीं है। उम्र के साथ मन की उमंगें भी उठती हैं। मेरी दोस्त भी अभ्यासशील नहीं थीं। श्रीमंत और वाहियात थीं। उनके पास की पुस्तकें पढ़कर और उनकी बातें सुनकर मनचाहा ज्ञान भी बढ़ने लगा और वह भी अधूरा—कल्पना और पुस्तकों से प्राप्त।

शरीर की कलियां खिलने लगीं। अंग असमय में ही विकसित होने लगे। घर पर रहने में ऊबने लगी। बाहर अधिक रहने लगी। बाहर किसी ने थोड़ा मीठा बोले, प्रशंसा कर दी, हाथ का एकाध काम कर दिया, तो सब प्यार देने हैं। खाने को मिलता है।

मेरा शरीर, मेरे अंग बढ़ रहे थे। किसी को सुगन्ध अर्पित करने के लिए कसमसा रहे थे। पर मेरी इन भावनाओं की किसी को कल्पना नहीं थी। मैं तो घरवालों के लिए अभी भी फ्राक वाली लड़की थी। अभी ताई के विवाह का विषय चालू था। इस माप से तो मेरा छठा नम्बर आने में दस बारह वर्ष लगना साधारण था।

पिछले कार्यक्रम मे रात को घर पहुचाने आते समय लेले सर द्वारा किये गये स्पर्श से मुझे पुरुष स्पर्श के जादू का ज्ञान हो गया था। अभी मुझे स्त्री-पुरुष के सम्बन्धो का पूरा ज्ञान समझ मे नही आया था—न ही उसकी प्यास थी। किन्तु घूमते-फिरते, गप्पें लगाते, सिनेमा देखते किसी तरुण का स्पर्श हो, यह प्राथमिक इच्छा बलवती हो रही थी। मेरी कई दोस्तो के बडे भाई थे। उनके मित्र उनके घर आते। उनको रोज ही तरुणो का सहवास सहज सुलभ तरीके से प्राप्त होता था। हमारा भाई छोटा था, अत कोई परकीय तरुण हमारे यहा कभी नही आता था।

जिला-स्पोर्ट्स के लिए हम एस०टी० से जादा गये। वापस आते समय सामने की सीट पर हमारे स्कूल का चैम्पियन राणे बैठा था। बस के अन्दर की लाइट बन्द हो गयी। राणे के पाव बार-बार मेरे पावो से टकराने लगे। एक बार मेरे पजे पर उसका हाथ भी आ गया। मैं अनजान बनने का बहाना करके पास बैठी खिलाडी लडकी से बात करती रही। राणे के स्पर्श से मुझे सनसनी हो रही थी। अन्त मे उसने मेरा हाथ अपने हाथो मे लेकर दबाया। मैं रोमाचित हो गयी। फौलादी सुगठित शरीर, सिंह जैसे नेत्र, मूछो की फूटती रेखा वाला रगीला राणे। लगातार फेल होने से बडी उम्र का, पर चैम्पियन होने से फीस माफ करके कई साल से ग्यारहवी मे पढ रहा था। स्कूल ने उसे क्रीडा-पारितोषिको के लिए ही तो बना रखा था।

उस बलिष्ठ राणे का उत्तेजक स्पर्श। रक्त मे तेजी आ गयी। उसके दो पजो की गर्मी से ठड उड गयी। इतने मे सामने से ट्रक आने पर बस मे ड्राइवर ने एकदम ब्रेक लगाया। मैं सीधी राणे की छाती पर गिर पडी। उसके आलिगन मे आ गयी।

पुरुष स्पर्श की प्यास शायद बढती ही गयी। मुझे एक सत्य का पता चला। मेरी हीन भावना मिट गयी। मैं और राणे आपस मे मिलने लगे। स्कूल से गोता लगाकर रगीली अग्रेजी फिल्मे देखने लगे।

स्कूल मे बडे घरो की और फैशनेबुल लडकियो की ओर कभी घूमकर भी न देखने वाला राणे मुझे खुश रखने मे लगा रहता था। उसका शरीर सिंह जैसा था, तो मैं भी शेरनी थी। काव्यात्मक उपमाओ जैसा सौन्दर्य

मुझ में नहीं था, तो भी खरे पुरुष को आकर्षित करने वाला सुन्दर, निरोग और तरुणाई से उफनता हुआ शरीर मेरे पास था।

मैं आग थी! मुझे विश्वास हो गया कि मैं-मैं करने वाले पुरुष को इस आग में मक्खन की तरह पिघलाने की क्षमता मुझ में है। मेरा आत्मविश्वास बढ़ गया। इस आग में, यौवन के शर-संधान के लिए मैं नये-नये शिकार देखने लगी। किसी की भी बलि लेते ही मेरा अहंकार बढ़ता जाता। आज तक उपेक्षित मन को, प्रशंसा के भूखे हृदय को इन शिकारों का रक्त प्राशन अच्छा लगने लगा ..

६

"माई डियर मिस्टर बेनेट, जेन अब बड़ी हो गयी है, तुम्हारे ध्यान में कब आयेगा।" मां प्यार में बाबा को मिस्टर बेनेट पुकारती थी।

"सुजा बड़ी हो गयी है यह ध्यान में नहीं आता, पर सुप्रिया को देखकर लगता है कि अब सभी बड़ी हो गयी हैं।"

"फिर क्या करने वाले हो?" मां ने बाबा के सामने चाय रखते हुए कहा। चाय का यह आठवां कप बाबा को ही मिलता था नाश्ते के साथ। बाद में वे आफिस जाते और भोजन के लिए एक बजे घर आते।

मैं बाहर से सुन रही थी—यह भी अपना नाम आने के कारण।

"सुजाता घर में चली जायेगी, इसी भय से मैं जूते खरीदने में भी डरता हूं।"

"सुजा ही क्या, सभी चिड़ियाएं उड़कर अपने घर जायेंगी। इसके लिए दस वर्ष तक तुम्हें जूते घिसने पड़ेंगे। अब आलस छोड़ो।"

"मेरी जेन को कोई ले ही जायेगा।"

"हां, पर यहां डार्लिंग की प्रथा नहीं है। यह हिन्दुस्तान है। यह लो पत्रिका और यह फोटो।"

"आज ही इतने जोर का तकाजा क्यों?"

"पास-दूर की बात तो बाद में होगी। पड़ोस में डॉक्टर साहब के यहां

उनका छोटा भाई आया है। वात करते-करते उनका मन तोलो।"

मैंने नल वन्द किया।

डॉक्टर का भाई ? भूपाल ? मैंने बाजी जीतकर भूपाल पर भी छाप डाल दी थी। वह मुझसे होगा तो दस वर्ष बडा, पर पास खडा होने पर मेरे बराबर ही दिखाई देता था।

डॉक्टरी की अन्तिम वर्ष की परीक्षा देकर भूपाल छुट्टियों में अपने भाई के पास आया था। रेंजरिण बाई और नीता ताई के यहा मैं जाती ही रहती थी। कभी-कभी उनके यहा भोजन भी कर लेती थी।

डॉक्टर चालीस वर्ष के थे, पर दूसरी लडकियो के सामने भी बडा विचित्र व्यवहार करते थे। अपने बच्चो की तो बात अलग ही थी।

मैं एक दिन दोपहर में डॉक्टर के यहा गयी। वे सोये थे। मतलब लेटे हुए ही थे। मैं हॉल में बैठी। उन्होंने नौकर से पूछा —"बाहर कौन आया है ?"

"सुप्रिया।"

"सुप्रिया, अन्दर आ न, देख कितनी अच्छी मासिक पत्रिका है यह। ले, पढ ! मैं लेट रहा हू, तब तक तू पढ ले इसे।"

मैं सकोच के साथ आगे गयी। ताई नींद में थी। मैं गयी तो भी डाक्टर उन्ही के विस्तर में थे। मैं दूर से ही मासिक पत्रिका लेकर आने लगी। मुझे ही शर्म आयी।

"बैठ न यही, अकेली बाहर क्या करेगी।"

"नही, वहा पखे के नीचे बैठती हू।" कहती हुई मैं बाहर आ गयी। मैं समझी नही कि मेरे सामने इतना भी व्यवहार ये कैसे करते हैं। हमारी मा और बाबा तो हमारे सामने एक पलग पर भी कभी नहीं बैठते। पर यह सही बात है कि मेरी ओर उनकी खराब निगाह नही थी। कई बार उनके साथ गयी, पर उन्होंने न कभी हाथ लगाया, न पास बिठाया। पर अपनी पत्नी के साथ यह सारा प्रदर्शन क्यो ? क्या वे मुझे 'अबोध' समझते थे ?

भूपाल के आने की बहुत धूमधाम थी। नीता ताई को वह बहुत अच्छा लगता था। भोजन के बाद डॉक्टर विश्राम करते और हम सब खेलते-खाते मजे करते।

भूपाल शुरू में मेरी ओर ध्यान नहीं देता था। सुनीता और सुनि को देखकर उसने कहा था, "भाभी, ये अपने यहां नहीं आतीं, उन्हें भी खेलने के लिए बुलाओ न।"

मैंने दांत पीस लिये। उनकी गोरी चमडी पर मुग्ध हो गया है। उन्हें यहां पांव भी न रखने देने का मैंने तय किया। भगवान ने ही मेरी मदद की। छुट्टियों में चारों बहनें मौसी के यहां चली गयीं।

अब देखती हूं भूपाल, तू मक्खन है या लोटा? ताश खेलने, घूमने जाते, सिनेमा जाते मैं उसका स्पर्श इस प्रकार करती जैसे गलती से हो गया हो। एक दिन गलती से ही हमारी टक्कर हो गयी। वह भी गिर पडा और मैं भी। उसने मुझे उठाया और कोच तक ले गया। और यहीं से मेरी स्पर्श मोहिनी में आ गया। जब ताई नहीं रहती थी, उस समय वह मुझ से छेड-छाड करता। एक दिन उसने मेरा आलिंगन करके चुम्बन ले लिया।

आखिरकार भूपाल भी शिकार हो ही गया। गोरा, श्रीमन्त और उच्च-शिक्षित निराभय पौरुष में पूर्ण भूपाल मेरा बन गया। उसके बाद उसने अन्य लड़कियों के बारे में उत्सुकता नहीं दिखायी। मुझ से अकेले में मिलने का ही अक्सर अवसर ढूंढता रहता। पर मुझे यह शिकार पूरी तरह खाना था। मैं शादी के वचन की भूमिका बांधने लगी। मैं भंवरे की तरह उसके सान्निध्य में रहकर अपने लक्ष्य-पूर्ति के योग्य समय की राह देखने लगी।

रेंजर साहब ने अपने बंगले के विस्तृत लॉन में बैडमिण्टन का कोर्ट बनाया था। वे और उनके सहयोगी रोज वहां पर खेलते। रेंजर जब दूर पर होते, तब कोर्ट खाली रहता।

भूपाल को बैडमिण्टन अच्छा आता था। मैं भी स्पोर्ट्स की चैम्पियन थी। जब कोर्ट खाली होता, तो हम दोनों खेलते। भूपाल कभी तो अच्छी तरह खेलता और कभी मेरी गोलाइयों को ही देखता रहता। बैडमिण्टन खेलते समय मैं शार्ट स्कर्ट पहनती। एक दिन मैंने तंग स्लेवस कुर्ता पहन लिया। उस दिन तो भूपाल लव-गेम में हार गया। वह मेरी ओर एकटक लगाकर देख रहा था।

"ओ चैम्पियन, आज मुफ्त में लव गेम खाया। सीधे-से शाट्स तक चूक गये, ध्यान कहां था ?"

"तेरी ही ओर।"

"शार्ट्स की ओर रखना चाहिए था।'

वह मेरे नजदीक खिसक आया। उसने एकदम कान के साथ मुंह लगाया और बोला, "प्रिया आज क्या मारवेलस दिखायी दे रही है।"

उसके प्रिया सम्बोधन से मेरे शरीर में रोमांच हो आया। अपने नाम का इतना शार्ट फार्म आज ही सुना था और वह भी अपने प्रिय युवक साथी के मुख से।

भूपाल ने चारों ओर नजर फैलायी। उस बन्द कोर्ट में हम दोनों ही थे। उसने मुझे एकदम आलिंगन में ले लिया और बोला, "यह कुर्ता पहनेगी तो ऐसी ही सजा मिलेगी।" यह आलिंगन काफी देर तक नहीं छूटता, पर उनका कुत्ता भौंकता हुआ आया, तब हम दूर हुए। मुझे इस क्षण का फायदा उठाना था। "भूपाल! पुरुष केवल मीठी-मीठी बातें करते हैं। यों ही मुझे पागल बना देगा और छुट्टी पूरी होते ही चला जायेगा। बम्बई के समुद्र में अनेक सुनहरी-रुपहली मछलियां हैं, उनसे खेलता रहेगा या किसी बड़े घर की वधू ले आयेगा। सुप्रिया तेरी याद में जन्म-भर कुढ़ती रहेगी या जहर पी लेगी।"

मेरा चेहरा पकड़कर दीर्घ चुम्बन लेते हुए वह बोला, "मेरे होंठों का यह वचन मैं भूल जाऊंगा हम उच्च कुल के हैं। वादा वादा ही है।" उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "तुझे अपनी बनाकर रहूंगा। तेरा यह हाथ जन्म भर मेरा ही रहेगा।"

मैंने नेत्र चालन करते हुए कहा, "चिमटी भर।"

उसने भी ऐसे ही स्थान पर चिमटी ली! मैंने उसको चपत मारकर कहा—

"भूपाल, इस ससार की अच्छाइयों पर आज मेरा विश्वास बैठ गया। मुझसे कई गुना सुन्दर लड़कियां मिलने पर भी तू मुझे जीवन साथी बनायेगा, यह मेरा कैसा सौभाग्य है! पर इसके लिए तुझे बहुत विरोध सहना पड़ेगा। रूप, शिक्षा, सम्पत्ति—सभी दृष्टि से तो मैं तेरी अपेक्षा क्षुद्र हूं।"

"इसमें डर किस बात का। मुझे पत्नी की सम्पत्ति की क्या

आवश्यकता, मेरे पास सब कुछ है। तू एस०एम० है। जा, बस। मेरे साथ समाज मे कॉन्वेण्ट टाइप अंग्रेजी फटाफट बोलेगी वही बहुत है।"

बाबा और मा ताई की पत्रिका मूपाल के लिए डॉक्टर के पास ले जाने की बात कर रहे थे। बाबा दोपहर म आये। वे भोजन कर रहे थे। मैं छिपकर सुनन लगी।

"डॉक्टर को पत्रिका दी ?" मा ने पूछा।

"तेरे आग्रह से दी तो सही पर वे ता बहुत बडे श्रीमन्त हैं।"

"क्या हुआ ? सात हजार उसने जमा किये और तीन-चार हजार हम खर्च कर देंगे। दस हजार ज्यादा नही तो एकदम कम भी नही हैं।"

"माई डियर मिसेज बेनेट, एक लडकी के दस हजार अर्थात् छह के साठ हजार।"

"सभी के लिए दस हजार का कहा कहती हू मैं पर सुजाता··· अपनी " मा ने आगे की बात आखो की भाषा मे ही कही।

बाबा का कण्ठ भर आया होगा। वे हाथ धोने के लिए उठे। मा ने हाथ पकडकर पूरा भोजन करन का आग्रह किया। पर उन्होने मा के कन्धे पर सिर टिका दिया।

"अजी, अभी तो बारात निकली भी नही और क्या कर रह हो ? मैं मा होकर मन कठोर रखती हू और आप···? हा, डॉक्टर क्या बोल ?"

"व बोले, परसो उनके पिता आन वाले है, उसी समय चाय के लिए आओ। तभी भूपाल और पिताजी स पूछ लेंगे।"

मैंन निश्वास छोडा। देखा जाय, तो नौ वर्ष बडी बहन को छोडकर मैंने अपने विवाह की बात की, यह कितना गलत था ? सुजाता ताई क बारे में मुझे किसी भी प्रकार की ईर्ष्या अथवा द्वष नही था। एक बार लगा भी कि अपने हाथ का आचमन उसके हाथ पर छोड दू क्या ? पर मैं इतनी सन्त नही थी। मूपाल का मादक स्पर्श और उसके आलिंगन की गर्मी की प्यास मुझे रात दिन लगी हुई थी।

दो दिन बाद ही मूपाल के पास ताई के बारे म प्रस्ताव जानवाला था, तब तक मुझे अपना खूटा मजबूत करना था।

एक दिन उम एकात मे पाकर मैंन कबूल करा लिया कि वह खुद

अपने पिता से बात करके इसी वर्ष मुझसे विवाह करने का निश्चित कर लेगा। मैंने उसे पता नहीं चलने दिया कि उसके पिता आयेंगे, तब ताई के बारे में उससे बात होगी।

दूसरे दिन रविवार था। बाबा चार बजे डॉक्टर के घर गये और खिन्न मन से पांच बजे वापस आये।

अन्दर कमरे में मां और बाबा धीरे-धीरे बात करने लगे। मैंने खिड़की के बाहर से सुना।

"भूपाल के पिता की इच्छा अभी विवाह करने की नहीं है। वह अभी तीन वर्ष के लिए अमरीका जा रहा है।"

मैं दुविधापूर्ण मनस्थिति में पांच बजे रेंजर के बैडमिण्टन कोर्ट पर पहुंची। संकेतानुसार भूपाल भी आया। मैंने उससे पूछा, "तूने अपने बाबा से बात की?"

"नहीं!"

"पर तू तो किसी के विरोध की परवाह करनेवाला नहीं था।"

"पर अपन इस समय शादी करनेवाले थोड़े ही थे? एक वर्ष की जगह तीन वर्ष में करेंगे, तब तक तेरी एक-दो बहनों की शादी हो भी चुकेगी।"

"तीन वर्ष? भूपाल, तू तीन वर्ष तक मुझ से दूर रहेगा? मुझे भूल गया तो?" मैंने रोते हुए उसको बांहों में ले लिया।

उसने मुझे खूब समझाया और दो दिन तक खूब सहवास लूटने के बाद आश्वासन देकर चला गया। मैंने उससे पूछा भी, "भूपाल, मेरे तीन वर्ष कैसे बीतेंगे?"

"मेरा स्पर्श और मेरे शब्द हैं न! मैं पत्र और फोटो भेजता रहूंगा। इस सहवास की याद में ही तीन वर्ष निकल जायेंगे। फिर मेरे आते ही शादी! अब हंस दे।"

मैं हंसी, "भूपाल, वचन?"

उसने हाथ दिया, "इट्स जेंटलमंस वर्ड।"

वाह रे जेंटलमेन! अमरीका में कुछ दिन तक भूपाल के पत्र और फोटो आये, पर पांचवें माह ही अचानक समाचार मिला कि भूपाल ने अमरीका की किसी नर्स से विवाह कर लिया।

[illegible] /

बाबा और मा ने नि श्वास छोडा । अच्छा हुआ ताई बच गयी। दूसरे ही महीने उसका विवाह बाबा के आफिस मे आडिट के लिए आनेवाले एक सुन्दर तरुण चार्टर्ड एकाउटेंट मे हो गया।

पर मृणाल की घटना ने मुझे हिलाकर रख दिया। यह किसी भी व्यक्ति को पता नही चला । बैडमिण्टन कोर्ट की बेंच भ ही रात्रि के अधेरे मे मेरे बहाये हुए आसुओ को झेला।

७

इस छोटी सी उम्र मे ही मुझे मनुष्य स्वभाव के अच्छे अनुभव हो गये । मृणाल ने मुझे जो क्लेश पहुचाया था, उसमे मुझे मेरे मन को गहन शिक्षा मिल गयी। यह तो मैं पहले भी समझती थी कि कहा तक दौडना और कहा रुकना । नही तो मृणाल की कोई निशानी रह जाती कल्पना ही कितनी भयकर है !

इस दैवी—नही—मानवी विपत्ति को देखन के लिए मेरी चारो बहनें घर नही थी। मै अकेली रात-रात-भर जागती रहती, तडफती रहती। एकान्त मे जी भरकर रोत रहने से दु ख हलका हो गया। मा और दादी समझी कि मैं गम्भीरता मे पढाई मे लग रही हू। रात-रात-भर जागकर पढाई करने से मुरझा रही हू।

इस अनुभव से कम-से-कम उस समय मुझे पुरुष जाति से चिढ और घृणा होने लगी। राणे एस०एस०सी० म घबराकर अपने पिता क डर म कारखाने के काम मे जुट गया था। उसका न तो पत्र, न उससे मुलाकात। मुझे भी उसके लिए व्याकुलता नही हुई। पर मृणाल न सिनेमा-उपन्यास की तरह नानाविध प्रेम प्रदर्शित किया और उसी तरह धोखा दे गया, यह बात मुझे चुभती रही।

छुट्टी के बाद स्कूल शुरू हुआ। मैं कछुए की तरह अग समेटकर, अलिप्त होकर स्कूल जाने लगी। स्वाभाविक रूप से मेरा मन पढाई म लगने लगा। प्रणयी मन का स्थान अध्ययन-वृत्ति ने ले लिया।

नवम्बर तक ताई ने मुझे पढाई मे मदद दी। दिसम्बर मे शादी करके वह बम्बई चली गयी। सुहास न अप्रैल मे एस०एस०सी० किया था और अब वह कीर्तने बाई की क्लास मे पढाती थी। सुली टेलीफोन आपरेटर का कोर्स कर रही थी।

मकान्ति पर ताई और जीजाजी आये। मा ने उनकी खूब मेहमानदारी की। तिलवण बनाया। फोटो निकलवाये। चार दिन तक कितना आनन्द रहा। ऐसी ही धूमधाम जब बुआ और अकल आये थे, तब भी रही थी। उसी के बाद तो वज्राघात हुआ था। इसीलिए मैंने इस बार अधिक उत्साह नही दिखाया। सुनीता और सुली बम्बई ही थी।

मा ताई को रोकना चाहती थी। जीजाजी सज्जन थे। पर नयी-नयी शादी। छोडकर कैसे जाते ? बाबा ने दोनों को जाने की इजाजत दे दी।

मेरे अध्ययन का अच्छा ही परिणाम निकला। सडसठ प्रतिशत अक प्राप्त करके मैंने एस०एस०सी० पास कर ली। घरवालों को तो क्या, मुझे भी ऐसी अपेक्षा नही थी। पर मेरी अग्रेजी सिद्ध और निर्दोष थी। भाषा पर अच्छा अधिकार था।

मैंने सुचेता की तरह ही घर पर ही पढाई करके बी०ए० करने का विचार किया। अभी पन्द्रह ही वर्ष की तो थी। तीन वर्ष तक सरकारी नौकरी मिलनी सम्भव नही थी। बी०ए० के बाद लेवर-आफीसर अथवा पर्सनल सेक्रेटरी का कोर्स करने का विचार था।

मेरे पास होने के बाद ताई एक बार आयी थी। उसने मुझे एक सुन्दर साडी और भडकीला पर्स दिया। "तू बी०ए० करेगी, तो फीस और पुस्तको के पैसे मैं दूगी।" ताई ने कहा था।

मैंने फार्म भरकर पूना विद्यापीठ भेजा। उत्तर आया—प्राइवेट तो शादीशुदा या नौकरी मे लगी लडकिया ही बैठ सकती है। मैंने विद्यापीठ को लिखा कि मैं पन्द्रह वर्ष की हू। नौकरी कैसे मिल सकती है। कई दिनो बाद उत्तर आया कि कम-से-कम रोजगार कार्यालय मे रजिस्ट्रेशन करा लो। दसवी का प्रमाण-पत्र भेजो। रोजगार कार्यालय पहुची तो कहा—रजिस्ट्रेशन की अवधि निकल गयी, अगले वर्ष आओ। वर्ष ही बेकार हो गया।

अब एक वर्ष बेकार बैठकर क्या करूं? न तो नौकरी, न स्कूल। अध्ययन का भी क्रम टूट गया। खाने, पीने, सोने, भटकने की ज़िन्दगी शुरू हो गयी।

रेंजरिण बाई और नीता ताई के पास समय बर्बाद करने लगी। बाकी बचा समय अपनी दोनों श्रीमन्त दोस्तों के साथ बीतता। वे किसी तरह अको दर म पास हो गयी थी तथा खाली थी। उनके घर, उनके भाइयों के साथ कैरम खेलना, रेकार्ड बजाना, खाना-पीना चालू हो गया। उनके भाई बम्बई मे उत्तेजक चित्रों की मराठी और अंग्रेज़ी पुस्तकें लाते। मैं चुपचाप उठाकर ले आती और पढकर चुपचाप वापस रख देती। सिनेमा और पिकनिक चालू थे। गत वर्ष की विरक्त अध्ययनशील सुप्रिया अनजाने ही गायब हो गयी थी। बची वही अल्हड, रंगीली, मूर्ख तरुणी।

पढाई या नौकरी कुछ भी न होने के कारण मुझे कम-से कम मा को घर के काम मे मदद देनी चाहिए थी, पर फटाफट होनेवाले ताकत के काम करके मैं मा को सन्तोष दे देती। समय-खाऊ काम मुझ से नही होते।

सुमगल अब एस०एस०सी० मे था। सभी की अपेक्षा थी कि मैं उसे पढाऊ, पर मैंने उस अपनी कॉपिया दे दी। सुचेता बी० ए० हो गयी थी। मैंने सुमगल की पढाई उसके सिर थोप दी।

मेरे खाली दिमाग, समय और शरीर पर शैतान कब्जा जमा रहा था। मुझे पता नही चल रहा था।

एक रात बुआ का ट्रककाल आया। बाबा सुबह ही बम्बई गये। आठ दिन में वापस आये, तो ऐसा लगा कि दस वर्ष बूढे हो गये। सुनीता कही गायब हो गयी थी। पिछले दिनो उस दो व्यावसायिक नाटक कम्पनियों में कुछ काम मिल गया था। इसलिए वह वही रहती थी। घर-काम मे मदद के लिए बुआ को भी अच्छा लग रहा था।

मा और दादी नाटक मे काम करने के विरोध मे थी, पर सुनी की जिद पर बाबा ने इजाजत दे दी।

एक नाटक के रजत महोत्सव पर मद्रास के एक धनाढ्य निर्माता अध्यक्ष थे। उन्होने सुनी के काम की स्तुति की। अपने होटल मे उसे लच दिया और अन्त मे अपनी फिल्म मे रोल देने की आफर दी।

सुनी आनन्द में पागल हो गयी। इतना बड़ा निर्माता स्वयं परिचय बढ़ाकर आफर देता है, कितना बड़ा भाग्य है यह ? उसकी गर्दन अभिमान से ऊंची हो गयी। वह आकाश में उड़ने लगी। विचार करने या न करने का प्रश्न ही नहीं था। वह तत्काल राजी हो गयी और उसके साथ वहीं से रात्रि के वायुयान द्वारा चली गयी।

मद्रास से उसने तीन पत्र भेजे। दो तो नाटक कम्पनियों के मालिक को करार भंग करने के बारे में और तीसरा और अन्तिम बुआ को। सारी घटनाएं साफ-साफ लिखते हुए उसने कहा था—

मेरी खोज करने में समय और पैसा बरबाद न करना। मनस्ताप भी भी न करना। मैंने अपना ध्येय पा लिया है। तुम सिनमा के लिए मुझे इजाजत नहीं देते, अब मैं चुपचाप आ गयी।

तुम्हारे उपकार मैं नहीं भूलूंगी। मेरी बहनों के विवाह में अड़चन न पड़े, इसीलिए सम्भव हो, तब तक यह बात गुप्त रखना। इतना ही बताना कि मैं मद्रास में नौकरी कर रही हूं।"

बाबा ने बम्बई आने के बाद सुनी को खूब ढूंढा। चौथे दिन उसका पत्र मिला था। बाबा ने मद्रास के उस निर्माता को ट्रंक किया। उसने फोन सुनी को दे दिया। सुनी ने वापस आने से स्पष्ट इनकार किया।

बाबा वापस घर आये। बुआ भी साथ थी। चारों बड़े लोग रात्रि में गुपचुप चर्चा करते। मैं अपने स्वभाव के अनुसार छिप-छिपकर सुनती। इसीलिए मुझे सुनी के पराक्रम का पता चला।

हम चारों की शादी जितनी जल्दी सम्भव हो करने के प्रयास शुरू हो गये। एक बार बदनामी होने के बाद शादी होनी मुश्किल होगी। बुआ ने माँ के नाम पर मंजू के निमित्त जो पैसे जमा कराये थे उसकी रकम ब्याज सहित काफी जमा हो गयी थी। मुक्ता ने भी पैसे जमा कर लिये थे। इन पैसों के बल पर बाबा लड़के ढूंढ़ने निकले।

सुनी ने शादी करने से साफ इनकार कर दिया। बाबा तो उसके लिए कोई क्लर्क या छोटा अधिकारी ढूंढ सकते थे पर सुनी तो बड़े सपने देख रही थी। उसे तो कोई धनवान वकरा चाहिए था। मुझे भी अच्छे वेतन की नौकरी चाहिए थी। पर प्रि-यूनिवर्सिटी शिक्षण में ही बाधा पड़ आने

के कारण न तो विरोध किया, न ही उत्साह दिखाया। मन में कहा—समय आयेगा, तब देखा जायेगा। बाबा हम तीनों की पत्रिकाएं लेकर निकले। निकलते समय बुआ ने मां से कहा—"भाभी, तेरे छह बच्चों में से एक को तो मैं ही हल्का कर देती, पर वे अकस्मात चले गये। सम्भव हुआ, तो एक को अपनी बहू बनाकर सुख से रखूंगी। तुम्हें सारे लग्न-खर्च की चिन्ता से मुक्त कर दूंगी। पर यह संजू की मर्जी पर है। अब तो वह डॉक्टर हो गया है, अच्छी नौकरी कर रहा है, इसलिए उससे पूछना पड़ेगा।"

"बहन, तुम्हारा बड़प्पन तुम्हारे ही लायक है। इतना बड़ा मन कहां से लाये! तुम्हारे इकलौते गुणी लड़के के योग्य मेरे पास लड़की कहां?" मां गद्गद होकर बोली।

"यह संजू तय करेगा।"

जाते समय के बुआ के शब्द मेरे मन में खलबली मचा गये।

संजू! संजू के बारे में मेरी भावनाएं अभी अबोध ही थी। अब मैं सोचने लगी। संजू किसको चुनेगा? उसके रूप और गुण के अनुरूप हम में से कोई नहीं थी।

मैं संजू से चार-पांच वर्ष छोटी थी। उसके साथ खेली थी, स्कूल गयी थी। बचपन से ही हमारी घुटती थी। पर अब मेरी मनोवृत्ति उसके प्रगल्भ और उदार विचारों के योग्य नहीं थी। संजू के उज्ज्वल चरित्र को शोभा देनेवाली पवित्रता भी तो मेरे पास नहीं थी। उसको पाने का विचार करने की हिम्मत भी मुझ में नहीं थी।

संजू के गुणों के योग्य तो हमारे यहां ताई ही थी। उसके स्वभाव का स्मरण हो आया। बड़े लाड प्यार में पली पहली लड़की—ताई। इस प्यार से वह बिगड़ी क्यों नहीं, हठी क्यों नहीं बनी? हर बहन ने, बाद में पैदा होनेवाली से ईर्ष्या की, पर ताई ने तो सबको प्रेम दिया। मानवी मन को गणित के समीकरण में नहीं बांधा जा सकता।

थोड़े दिन बाद बाबा ने मुझे और सुहास को बम्बई बुलाया। हम चौपाटी पर फिर रहे थे। रास्ते में बाबा को एक परिचित व्यक्ति मिला। वे दोनों बातें करने लगे। वह व्यक्ति बार-बार हमारी ओर देख रहा था।

रात को दादा ने बताया, उन सज्जन को लड़के की शादी करनी है। सामने बिठाकर वधू परीक्षा कराना दोनों पक्षों के लिए हास्यास्पद होता, इसलिए यह तरीका अपनाया।

हम दोनों ने पूछा, "पर सुचिता से पहले हमारा कैसे ?"

'उसका तय हो गया।"

"किससे ?"

"सजू से।"

हम दोनों कुछ भी बोल नहीं पाये।

"उसका तय होने के बाद ही तुम्हारा प्रयास शुरू हुआ। सम्भव हो, तो दो फेरे एक साथ फेर दूं। उतना ही खर्च कम लगेगा। तुम्हारी शादी समय पर हो जाये, तो बस मेरी छुट्टी।"

बाबा का दुखी-चिन्तातुर चेहरा देखकर हमें न जाने कैसा लग रहा था। क्षण-भर लगा कि वह तरुण हां कह दे, तो जल्दी से शादी कर डालें।

पर यह पितृ-प्रेम अधिक देर नहीं रहा। आंखों के सामने ढेर-सारे पैसे देनेवाली नौकरी करने वाला या धनवान लड़का घूमने लगा। उस व्यक्ति ने सुहास को पसन्द किया। मुझे बुरा नहीं लगा। पर सजू ने दुबली पतली ठिगनी सुचेता को कैसे पसन्द किया ? सजू जैसे ऊंचे आकर्षक मटके के सामने सुची कैसी दिखायी देगी ?

इस प्रश्न का उत्तर बुआ ने ही दिया। सजू ने वैचारिक प्रगल्भता और शिक्षण को महत्त्व दिया है। परिस्थितियों ने सुचेता को दुक्खखोरी बना दिया है पर सजू के प्रेम और मेरे स्नेह व्यवहार से वह खिल उठेगी।"

सुचेता और सुहास का विवाह एक ही समय पर तय हुआ। दादा के भाई न होने से एक का कन्यादान मौसी करने वाली थी।

मां खरीदारी के लिए बुआ के पास आयी।

"भाभी, मुझे कुछ नहीं चाहिए। खरीदारी में पैसा और शक्ति बर्बाद मत करो।"

"पर सुहास के लिए तो चाहिए न।"

"हां, बहन।" खरीदारी में ताई भी मां की मदद कर रही थी।

विवाह के एक दिन पूर्व सुहास बुरी तरह रोने लगी। बाबा और मा दौडते हुए गये। पूछताछ की। उसने बाबा को एक पत्र पकडाया।

एक अज्ञात हितचिन्तक ने लिखा था कि सुहास के भावी पति का लग्न छह वर्ष पूर्व हुआ था। उसकी पत्नी न चार वर्ष पहले जलकर आत्महत्या कर ली। उस समय उसके एक लडका था, वह अभी पाच वर्ष का है।

दादी ने रास्ता निकाला, "दूहेजू हुआ, तो भी क्या बिगडा? तरुण ता है न!"

"हा, पर उसके एक लडका है।"

'इसीलिए ता कम हुण्डी म उन्होने मान लिया? नही तो स्थान अपनी पहुच के बाहर था।' मौसी सम्बन्ध तोडने के सकट को टालना चाहती थी।

"पर छिपाया क्या?"

'शादी और युद्ध मे सब क्षम्य है। तुमने सुनीता की बात नही छिपायी क्या?'

"बाबा, आप अच्छी तरह जाच करो। वे अगर साफ कहते, तो एक बिना मा के बच्चे को स्नेह देने के लिए मैं तैयार होती, पर इस दुराव-छिपाव से मुझे सशय हो रहा है। पहली पत्नी न आत्महत्या क्यो की?"

हमारे जीजाजी ने प्राइवेट जासूस को पैसे देकर बारह घटे मे रिपोर्ट मागी। पता चला उसके लडका था। पति के उग्र और सशयी स्वभाव से परेशान होकर उसने आत्महत्या की।

सम्बन्ध तोडने का तय हो गया। पर सुबह निमन्त्रित व्यक्ति आयेंगे, तब उन्हे क्या उत्तर देंगे?

गायब हुए जवाई आठ बजे तक वापस आये। साथ मे एक हसमुख आकर्षक सावला तरुण था।

"बाबा साहब, यह जवाई चलेगा?"

"अर्थात्?"

"सुहास का विवाह निश्चित मुहूर्त पर ही होगा। यह मेरा क्लासमेट है। दो वर्ष पूर्व यहा की नौकरी छोडकर सिंगापुर की एक सिंधी फर्म मे चीफ एकाउन्टेन्ट की नौकरी कर रहा है। वेतन मुझसे दुगुना है। फ्लेट

और सारी सुविधाएं हैं। आपकी लड़की समुद्र पार जायेगी, इतनी ही बात है। यह शादी के लिए महीने-भर की छुट्टी लेकर ही आया था। अभी इसका विवाह कहीं तय नहीं हुआ है। मुझे यह मिल गया। आपकी इज्जत भी बच गयी।"

"तुम पर मेरा पूरा विश्वास है, पर य तुम्हारे दबाव या दया में आकर दयावश शादी कर रहे हो, तो अभी रुक जायें। सोचकर निर्णय करने के बाद ही शादी होगी।"

"इन्हें कुछ नहीं सोचना। ये आज ही तैयार हैं।"

'शुभस्य शीघ्रम्।'

इस गड़बड़ी में सुहास का निर्णय किसी ने नहीं पूछा। उसे भी बुरा नहीं लगा। वह तो इसी से खुश थी कि पहले संकट से बच गयी।

मुझे आश्चर्य हो रहा था कि ताई, सुचेता और सुहास बाबा के पसन्द के लड़कों से शादी करके कितनी खुश थीं। बाबा पर उनकी कितनी श्रद्धा थी। मुनी, सुली और मैंने बड़ी-बड़ी योजनाएं बनायीं। मां-बाप के अनुभव और सलाह की आवश्यकता नहीं समझी, पर परिणाम?

८

घर अब सुनसान लगने लगा था। तीन ससुराल चली गयी थीं, सुली आपरेटर का कोर्स कर रही थी। सुनीता का पता नहीं था। रामप्पा फिल्म्स की सभी फिल्में देखीं, पर सुनीता उनमें कहीं दिखाई नहीं दी। विज्ञापनों में भी कभी उसका नाम नहीं आया।

बाबा मेरे विवाह का थोड़ा-बहुत प्रयत्न करते रहते थे। इससे मुझे चिन्ता होती थी। वर्ष-भर आराम करने में आलसी हो गयी थी। कुछ काम नहीं करती थी। यों घर पर अब अधिक काम भी नहीं था। नीता ताई और रेंजरिण बाई के पास आना-जाना चालू था।

रेंजर साहब को पता लग गया था कि मुझे बैडमिंटन अच्छा आता है। वे मुझे खेलने बुला लेते। एक शाम वहां गयी। रेंजरिण बाई दोपहर में ही निवट के किसी गांव गयी थी।

हमने एक सेट खेला। रेंजर बोले, "सुप्रिया, चाय की इच्छा हो रही है। बनायें क्या ?"

"मैं बनाती हूं।"

मैंने चाय का पानी रखा। रेंजर साहब डायनिंग टेबुल के पास कुर्सी पर बैठे। मैंने चाय का डिब्बा उतारने के लिए हाथ ऊपर किया। वे मुझे एकटक देख रहे थे। चीनी का डिब्बा ऊपर था। उसे उतारने में मदद करने के बहाने वे पास आ गये। हमारा स्पर्श हुआ। अकस्मात् या उद्देश्यपूर्ण ?

हम चाय पी रहे थे। मैं उनकी थाह ले रही थी। शानदार आकर्षक व्यक्तित्व, अधिकार वाली नौकरी, खूब वेतन, घर की जवाबदारी कम। उनकी भी नज़रें मुझमें कुछ ढूंढ रही थीं। कुछ कहने को उत्सुक थीं।

"वह अभी तक नहीं आयी। शायद रात की गाड़ी से आये। भोजन तो आने के बाद ही होगा।"

"मैं कुछ बना दूं क्या ?"

"नहीं, अभी ऐसी भूख नहीं है। पर नामकरण संस्कार में वह गयी है, अच्छा थोड़ा ही है। लोग व्यंग्य करते हैं।"

"उनको लगता होगा कि अपने भाग्य में नहीं है, तो दूसरों के यहां तो देखें।"

"वह अच्छे मन से जाती है, पर लोग ऐसा थोड़ा ही मानते हैं।"

"जिस बात का इलाज नहीं, उस पर दुख क्यों ?"

"इलाज नहीं. ." रेंजर साहब थोड़े गड़बड़ाये, "हां, उसके शरीर में धारण की ही क्षमता नहीं। पर मैं "मैं तो पूर्ण पुरुष होते हुए भी..."

उसकी आंखों में आंसू थे। मैं पिघल गयी। उन्हें दुलारते हुए बोली, "पुरुषों को धीरोदात्त होना चाहिए। भावनाओं में आकर दुखी क्यों होना ?"

"करता तो यही हूं। पर...पर सब सामर्थ्य होते हुए मेरा वंश मेरे

साथ समाप्त हो जायेगा, यह टीस उठती ही है।"

फिर एकदम उठकर मेरा कंधा पकड़ते हुए बोले, "सुप्रिया, तेरे जैसी स्वस्थ एवं रसीली तरुणी मेरा अंश स्वीकार करके मेरे बालरूप को इस संसार में ले आये तो..."

शरीर पर मोह का गहरा नशा चढ़ने लगा, पर मैं सावधान हो गयी।

"साहब, मैं कुंवारी हूं, और लोक निन्दा के भय से मुझे वह रूप नष्ट करना पड़ेगा। पुन-जन्म के लिए उत्सुक किसी स्त्री को ही अपना अंश दान दो। वह भी सुखी होगी और आपको भी अपना रूप देखने को मिलता रहेगा।"

इतना बोलकर मैं वहां से भागी और घर आ गयी।

अब तो इस माह में ही मैं ऊब-सी गयी थी। डॉक्टर और रेंजर के यहां जाना अच्छा नहीं लगता था, पर एकदम छोड़ने से शकाएं पैदा होने का डर था। कहीं दूसरी जगह जाना चाहती थी।

सुनी एक दिन अचानक ही दोपहर की गाड़ी से आयी। जरीदार हरी साड़ी, हरी चूड़ियां, हरा पर्स, बढ़िया जूड़ा उसमें वेणी—एकदम नव-वधू जैसी।

रविवार था। सभी घर थे। सुमंगल, बाहर से ही चिल्लाता हुआ आया, "मां, सुलक्षणा आयी है।"

उसके पीछे ही सुनी थी। देखकर सभी स्तब्ध-से हो गये। मैंने ही पूछा, "सुनी, क्या तू भी नाटक में काम करने लग गयी? एकदम दुल्हन का मेकअप करके आयी है।"

"पागल, यह मेकअप नहीं है, मैं वास्तव में नववधू हूं। आठ दिन पहले ही शादी की और महाबलेश्वर में हनीमून। जाते समय तुमसे मिलने आ गयी।"

"अकेली?" मैंने पूछा।

"हां, डर था कि यहां तुम लोग चिल्लाओ और कहीं मेरे पति का अपमान न कर दो।"

"पर ऐसा कौन बेवकूफ मिल गया?"

"सुमंगल, क्या तू सभ्यता से बात नहीं कर सकता?"

"ठीक है, जवाईं बाबू यहाँ के जागीरदार हैं।" दादी ने खासते हुए ही क्यों न हो, चुटकी ली।

"दादी, मुझे अच्छे शब्दों में जूता ही मारना है।"

"मुली, पहले बैठ, पानी पी, भोजन कर, फिर बातें करती रहना।" माँ ने उसको घर में लेते हुए कहा।

भोजन के बाद मुली ने दादी को सारा किस्सा बताया।

दूल्हा एयर इंडिया में बस ड्राइवर था। उसे टेलीफोन आपरेटर की नौकरी मिल गयी थी, पर वह एयर इंडिया में ही जाना चाहती थी। उसने कई सिलसिले जमाये, पर एयर इंडिया के बड़े अधिकारियों पर उसके रूप का भी असर नहीं हुआ। उसने चारों ओर से कोशिश शुरू की। उसकी हलचल देखकर एयर इंडिया के इस ड्राइवर ने उससे पूछताछ की, उसे सहानुभूति दिखायी। उसने भी खूब प्रयास किया और इस शर्त पर नौकरी दिलायी कि नौकरी का आर्डर मिलते ही उससे शादी कर लेगी।

"क्या ड्राइवर से शादी ? तूने कैसे माना ?" बाबा चीखे।

'बाबा, ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ चाहिए। ऊपर हाथ लगते ही सीढ़ी को धक्का दिया जा सकता है। यों वे अच्छे घर के हैं। टेक्नीशियन हैं। आपके गार्डन के साहब से अच्छा वेतन मिलता है। कम्पनी की बिल्डिंग में फ्लैट है। कोई व्यसन नहीं, बहुत सुन्दर है।"

उसने फोटो दिखाया। यूनिफार्म में आर्मी आफीसर से भी अधिक आकर्षक लग रहा था।

"फिर नौकरी मिली ?"

"भारी फीस देनी पड़ी। सीधी अर्जी देने की फीस—'एक रात'। नौकरी का हुक्म मिलते ही रजिस्ट्री से शादी। पर अभी यह शादी हमने गुप्त रखी है ताकि कभी एयर होस्टेस का काम मिले तो बाधा न आये। बच्चा हमें चाहिए नहीं। पास न मिला तो भी बुरा नहीं। वे भी आगे-पीछे असिस्टेंट ग्राउंड इंजीनियर बन जायेंगे।"

"धन्य हो, मुली! क्या किया और कितनी निर्लज्जता से बता रही है। यह शादी है या सौदा ? शिव-शिव!" दादी आँखें बन्द करके दीवान पर लेट गयी।

"विवाह गुप्त कैसे रहेगा ? तू रहेगी कहा ?"

"उसी बिल्डिंग मे मुझे भी क्वार्टर मिल गया है। दिन मे दो ब्लाक — रात मे एक।"

"छि, कैसा अघोरीपन !" मा ने घृणापूर्वक कहा।

"मा, मुझे तो अपना ध्येय पूरा करना है। जुगाड़ बिठाये बिना आजकल कुछ नही होता। सुनी ने क्या नही किया ? फिल्म बनने मे पहले ही रामप्पा के पास रहने लगी।"

मा-बाबा ने आखें निकाली।

"मुझे डराकर मेरी जीभ बन्द कर ही दोगे, तो भी ससार मे किस-किस को रोकोगे। हम तो अभी प्रत्यक्ष मे एक साथ रहते भी नही। अच्छा, अब जाती हू। कल सुबह ड्यूटी पर जाना है।"

"सुली, आज तो रह जा।"

"मा-बाबा ! आपने कहा, यही आपका बडप्पन है, पर मुझे जाना ही है।'

सुली झझावात की तरह आयी और घर को हिलाकर चली गयी।

बाबा को अब इस गाव मे रहना शोभाप्रद नही लगा। उन्होंने स्थानान्तरण की अर्जी दी। मजूर भी हो गयी। नये गाव मे पहुचे ही थे कि बम्बई से ट्रककाल। इन दिनो ट्रक का नाम सुनते हमारे दिल बैठ जाते थे। सुनीता बम्बई के एक प्राइवेट नर्सिंग होम मे सीरियस थी।

मैं, मा, बाबा और हमारे परिचित डॉक्टर—हम चारो ही टैक्सी से तुरन्त गये। नाम का नर्सिंग होम—दो कमरो का ब्लाक, एक नौसिखिये डॉक्टर ने अभी हाल ही मे कायम किया था। सुनीता मद्रास से अकेली आयी थी।

सुनीता बोलने की स्थिति मे नही थी। डॉक्टर से ही पूछताछ की—सुनीता कब आयी ? क्या हुआ ?...

डॉक्टर ने बालकनी मे ले जाकर धीमे स्वर मे बताया कि सुनीता चार-पाच माह का गर्भ लेकर आयी थी। किसी अनुभवी अभिनेत्री ने उसे यहा का पता दिया था। वह उसकी चिट्ठी भी लेकर आयी थी। पूरी अग्रिम फीस देकर गर्भपात कराया। इस डॉक्टर का धधा ही यही था।

छह सात वर्ष मे उसने एक बगला और गाडी खरीद ली थी। नर्सिंग होम की आया भी अप्रशिक्षित थी। सुनीता मुक्त हो गयी, किन्तु अधिक रक्त स्राव से बेहोश हो गयी थी।

आपरेशन से पूर्व उसने डॉक्टर को हमारा पता दे दिया था कि जरूरत पड़ने पर यहा सूचना दे दें। बुग्रा और डाक्टर सजू को उसने सुराग ही नहीं लगने दिया। डाक्टर ने पहले गाव मे फोन किया, वहा पोस्ट मास्टर ने बताया कि हमारा तबादला अमुक गाव में हो गया है। इसीलिए यहा सूचना दी।

सुनीता को रक्त की जरूरत थी। हमारे डॉक्टर ने विद्युत वेग से मामला सम्हाला। हम तीनो के रक्त वर्ग की जाच की। सुनीता का रक्त वर्ग दूसरा ही था। मैरवानूनी केस था। मामला छिपाने हुए सारा जोर लगाकर ब्लड बैंक से रक्त मगाया, सुनीता को खून चढाया। हम घटों प्रतीक्षा करते रहे।

सुनीता से बोलने, उसे क्षमा कर धैर्य बधाने के लिए हम सभी उत्सुक थे, पर होश नही आ रहा था। मुझे उसके तकिये के नीचे पर्स दिखाई दिया। मैंने चुपचाप निकाल लिया। खोलकर देखा—सौ-सौ रुपये के दस नोट और एक लिफाफा—'मा-बाबा को—मेरी मृत्यु होने पर।'

मैंने उसे खोल लिया। बाथरूम मे जाकर देखा, सुनीता की आत्मकथा ही थी। उसके होश मे आने पर मैं किसी से कहने वाली नहीं थी।

सुनीता रामप्पा के साथ गयी। वह जानती थी कि रामप्पा उसे मुफ्त मे प्रसिद्धि नही देगा। वह तैयार थी क्योंकि समझती थी कि जल्दी ही नायिका के शिखर तक नही पहुंची तो बाद मे कोई नही पूछेगा। वह रामप्पा की रखैल बनकर रहने लगी। रामप्पा पहले दो चित्रो मे उसे दूसरे नम्बर का रोल देकर तीसरे चित्र मे हीरोइन बनाने वाला था। पहला चित्र पूरा हुआ। उसमें वह हीरोइन की मित्र थी। दूसरे चित्र मे वह हीरो की बहन बनी। तीसरे मे हीरोइन के लिए काट्रेक्ट हुआ। शूटिंग भी शुरू हो गयी।

इन्ही दिनों उसके ध्यान मे आया कि उसे दिन चढ गये हैं, कभी भूल-चूक मे सावधानी मे कमी रह जाने से घपला हुआ होगा। दो फिल्में सेट

पर थी। क्या किया जाये ? वह कुवारी थी, बात प्रकट हो गयी, तो फिल्म जगत मे, फिल्मी पत्रिकाओ मे उसको लेकर तूफान खडा हो जायेगा। तीन-चार महीने तक सेट्स पर से गायब रहना निर्माताओं को मजूर नहीं होता। इसलिए रामप्पा मे घर के लोगो से मिलने का बहाना करके छुटकारा लेने के लिए बम्बई आ गयी। रामप्पा ने काफी पैसे दिये थे। एक अभिनेत्री ने इस डॉक्टर का पता दिया था।

सुनीता छुटकारे के बाद कुछ दिन विश्रान्ति लेकर वापस मद्रास जाने वाली थी।

मैंने पत्र छिपा लिया।

दूसरे दिन एक डॉक्टर और आये। तीनो डॉक्टर मिलकर कोशिश कर रहे थे। डॉक्टर को देखते ही मा पूछती, "होश आया ?"

वे इशारे से ही इकार करते।

बाबा ने कहा, "कम से-कम एक बार उसे पता चल जाये कि हमने उस क्षमा कर दिया है।"

डॉक्टर ने उसे एक शक्तिशाली इजेक्शन दिया। उसने सास लेकर आखें खोली। हमने हसकर उस थपथपाया, धैर्य बधाया कि हम उस पर गुस्सा नही हैं।

"तू जल्दी अच्छी होगी चिन्ता मत कर।" मैंने उसे आश्वासन दिया।

उसने डॉक्टर की ओर देखा, हसी—क्षीण-उदास हास्य। फिर हमारी ओर देखा। इसम भी उसे बडा परिश्रम हुआ। क्षीण होती शक्ति को इच्छा बल से समेटते हुए उसने हाथ जोडे और कहा, "सब मुझे क्षमा करना, जाती हू।"

दूसरे ही क्षण हाथ निर्जीव होकर गिर पडे। आखें बन्द हो गयी। सुनीता हमें सदैव के लिए छोडकर चली गयी।

नये गाव मे नयी गृहस्थी के प्रथम दिन ही इतना बडा अपशकुन। हमने सभी को अर्धसत्य बताया कि सुनीता बीमार होकर मद्रास से बम्बई आयी। वहा तबीयत और बिगड गयी। इलाज से भी नहीं बची।

चारो बहनें, तीनो जवाई, सुमगल, बुआ और मौसी घर पर इकट्ठे हुए। सुहास और उसका पति परदेश मे था, सुनी तो अब कभी वापस आने

वर्ष बाद मुझे मिला है। सुप्रिया, बचपन में अपन कितना लड़ते थे। एक-दूसरे पर गुस्सा करते थे, पर बड़े होने पर समझ आयी। और सुनी की मृत्यु के बाद तो लगता है कि किसी से भी झगड़ा क्या करना? सुनी की याद कितनी आ रही है। कल सुनी गयी, शायद अब मैं..."

"सुहास, अगर फिर से इस प्रकार बोलोगी, तो मेरी सौगन्ध है। मैं जीजाजी से कह दूंगी। मा-बाबा का कितना प्रेममय संसार रहा। उसी का स्मरण कर।"

मैंने सुहास को प्यार करके खूब समझाया। मन साफ़ हो जाने पर वह शान्ति से सो गयी।

मैं सुहास से बहुत स्नेहपूर्ण व्यवहार करके उसकी देख-रेख करती रही। मैं खेल, गप्पें तथा जैसे भी सम्भव हो उसको प्रसन्न रख रही थी।

जीजाजी आते ही उसके पास बैठते और मैं बावर्ची और घर का काम-काज देखती। चार-पांच दिन बाद रविवार आया। नाना साहेब ने शनिवार को ही कहा—"कल हम सब टैक्सी से उद्यान में घूमकर आयेंगे।"

उद्यान में हम दोपहर भर घूमे, ठंडी घास पर लेटे, रेकार्ड्स सुने, खाया पिया, खेले। वापस आते समय ट्रैफिक का लाल सिगनल देखकर ड्राइवर ने तेज ब्रेक लगाकर गाड़ी रोकी। सुहास तो गिर ही पड़ी। हम घबरा गये। मैंने तुरन्त उसे उठाकर सीट पर बिठाया।

उस रात डॉक्टर को बुलाया। ब्लीडिंग फिर से शुरू हो गयी थी। मैं डॉक्टर के निर्देश के अनुसार सेवा करती रही। पर मन-ही-मन घबराहट थी।

डॉक्टर ने नाना साहेब को बताया, "उसको एक महीने का पूर्ण बेड-रेस्ट दो। अगर ब्लीडिंग होती रही, तो बच्चा अन्दर-ही-अन्दर सूख जायेगा और दोनों का जीवन खतरे में पड़ेगा। आठवां महीना पूरा होने तक पूरी देख-रेख करो।"

मैं सुहास को फूलों की तरह रखने लगी। मेरी सेवा और तत्परता जीजाजी देखते थे तो मेरी तारीफ करते थे।

एक रविवार को जीजाजी अपने साथ चालीमी में चल रहे एक व्यक्ति को लेकर आये और बोले, "सुप्रिया, बावर्ची को दो आमलेट-टोस्ट और चाय

लाने का बता और तू बाहर आ।"

मैं बाहर आयी। वह व्यक्ति कोच पर शान के साथ बैठकर सिगरेट पी रहा था। वय के अनुपात से खूब मजबूत दिखायी दे रहा था। कान्ति बनी हुई थी।

'ये हमारे असिस्टेंट मैनेजर हैं। इतना अनुभवी हमारी कम्पनी में दूसरा कोई नहीं है। हमारे मैनेजर मालिक के रिश्तेदार हैं, नहीं तो इन्हीं का मैनेजर बनना था।"

मैंने नमस्कार किया। उन्होंने हाथ मिलाने के लिए हाथ आगे बढ़ाया था, वह वापस लेकर प्रतिनमस्कार किया।

'आपका परिचय हुआ, मेरा सौभाग्य है।"

'ये सामने की स्ट्रीट में रहते हैं। सुहास के साथ कहीं जाना होता नहीं, इसलिए तू ऊबती होगी, अब हम चारों ताश खेलेंगे।'

मैंने हां कहा। लगभग रोज ही ताश की बाजी जमने लगी। बाकी समय रेडियो, रेकार्ड-प्लेयर आदि। असिस्टेंट मैनेजर जगदीश कपूर का व्यक्तित्व शानदार था। खेल-कुशलता, संभाषण-चातुर्य तथा अपने व्यवहार से हमारे बराबर के ही लगते।

कभी कभी घंटे, डेढ़ घंटे तक के लिए जीजाजी के साथ जाकर सिंगापुर के आकर्षण देखकर आती। पर सोशल प्रोग्राम पार्टी वगैरह में दोनों का जाना सम्भव नहीं होता। सुहास को अधिक देर तक नौकरों के भरोसे रख जाना ठीक नहीं था। मैं हठपूर्वक जीजाजी को पार्टी, पिकनिक आदि में भेज देती।

एक दिन कपूर साहब से जीजाजी ने कहा, "इसको कोई पिक्चर दिखा लायेंगे क्या? आठ दिन में एकाध पिक्चर, डांस, फैशन शो आदि इसको दिखाओ न। हमेशा चारदीवारी में बन्द रहकर बोर होगी।"

कपूर साहब ने हंसकर कहा—"क्यों सिंगापुर से क्या योंही चली जायगी? वापस जाकर लोगों से क्या कहेगी कि जवाई की बिल्डिंग में ही बंद रही। एक बार पूरा सिंगापुर देख ले। कुआलालम्पुर भी जाकर आ। मैं यहां अकेला हूं। मेरी फैमिली इण्डिया गयी हुई है। मेरे पास समय भी है।"

में उन्मुक्त व्यवहार था। पहले के सारे दुःख और कष्ट मैं भूलती गयी। यह भी भूल गयी कि मैं क्यों आयी हूँ। यह हठ पुनः जोर पकड़ने लगा—'मैं आग हूँ। मेरे सान्निध्य में रहने वाले पुरुष को मक्खन की तरह पिघलना ही चाहिए।'

कपूर जैसा बलशाली पुरुष मेरे चारों ओर चक्कर काटने लगा, पर मल्कानी पिघल ही नहीं रहा था। सूरज मल्कानी को जीतने की इच्छा बलवती हो उठी। पढ़ाई करके नौकरी करने और फिर किसी अच्छे व्यक्ति से शादी करने का सारा हिसाब महँगा लगने लगा। मुझे तो ऐसा व्यक्ति चाहिए था, जो जीवन-भर सुख के झूले में झुलाता रहे। मुझे धनवान-वर चाहिए ही था। यही मेरा ध्येय था। सुनी ने एयर होस्टेस बनने के लिए शार्टकट ढूँढ़ लिया था। मुझे भी शार्टकट ढूँढ़कर जल्दी सुखी होना था।

मल्कानी! बस, यही तो शार्टकट है। वह स्वयं गले पड़े तो ठीक, नहीं तो जाल बिछाना ही है। रूप की कमी तो मेरे यौवन से पूर्ण रसभरा शरीर ही पूरी कर देगा। मल्कानी जैसा बढ़िया, सभ्य, सुन्दर, मन का मृदु, बलिष्ठ युवक तो फिर स्वप्न में भी मिलने वाला नहीं था।

मल्कानी के साथ रात-रात-भर क्लब में रहती। उसकी गाड़ी में दूर-दूर तक जाती, पर तो भी वह मर्यादा छोड़ ही नहीं रहा था। दूसरी ओर पूर्ण दुर्लक्ष्य के बाद भी कपूर साहब खुशामद कर रहे थे।

मैंने चुटकी बजायी। युक्ति! मल्कानी के सामने ही मैं कपूर को ज्यादा समय देने लगी। ताश के खेल में कपूर को अपना पार्टनर बनाती। कपूर को लेकर दो बार मल्कानी की दुकान पर गयी। कपूर ने मेरी पसन्द का सूटिंग खरीदा और मेरे लिए एक साड़ी भी।

एक रविवार को मल्कानी मुझे पिकनिक के लिए लेने आया। मैंने उसे इंकार किया और बताया कि रात को कपूर साहब के साथ पार्टी में जाना है। मैंने मल्कानी से सम्बन्ध नहीं तोड़ा, तो भी उसके सान्निध्य में रहकर दूसरों के बारे में अधिक बात करने लगी। मल्कानी के मन में ईर्ष्या का अंकुर फूटने लगा।

सुहास को प्रसूति के लिए अस्पताल ले गयी। प्रसूति बिना किसी खतरे

के बडे आराम से हुई। मैंने जीजाजी को फोन किया—"नाना साहेब, यू आर लकी। लडका हुआ है। अभिनन्दन।"

"धन्यवाद। सुहास ठीक है न और बच्चा भी?"

"हा। लेट अस सेलिब्रेट।"

उन्होंने कपूर और मल्कानी को भी फोन किया। दोनों ही दौडकर आये और बधाई दी।

मल्कानी की मोटर में हम आनन्द मनाने के लिए निकले। खूब घूमे, फिर एक मदिराघर में गये।

मैं झिझकी।

"सुप्रिया, केवल आज ही। मैं भी कभी नही लेता, पर आज तो अपवाद है।"

मैं घबरायी। मेरे दोनों ओर कपूर और मल्कानी, सामने नाना साहेब। मदिराघर में घूमती हुई रग-बिरगी रोशनी, मद मधुर सगीत, ग्लास और बोतलो की टन-टन आवाज, आह्वान देने वाला वातावरण एव सुखी मन। मैंने प्याला हाथ मे लिया।

"शाबाश!" कहते हुए कपूर ने मेरी पीठपर हाथ रखा। हम तीनो ने नाना साहेब के ग्लास से ग्लास टकराकर अभिनन्दन किया। पेट मे थोडी-सी मदिरा जाते ही वातावरण धुधला लगने लगा। वहा से हम चारो ही क्लब गये। मैं मल्कानी तथा बाद मे खास करके कपूर के साथ नाची। वापस आते समय मैं गाडी मे कपूर के साथ ही पीछे बैठी। सूरज मे ईर्ष्या लगाने के लिए ही मैं चालीस वर्ष के कपूर को निकट ले रही थी।

कपूर को रास्ते मे छोडकर हम अपनी बिल्डिंग मे आये। मल्कानी ने नाना साहेब को गुडनाइट किया। नाना साहेब चाबी से दरवाजा खोलने लगे, तब गुडनाइट कहते हुए मल्कानी ने मेरा हाथ पकड लिया और दोनों हाथों से दबाया। नाना साहेब अन्दर चले गये, तो भी कुछ क्षण हम ऐसे ही खडे रहे। इस स्पर्श के आवेग मे मैं भावुक हो उठी।

पर होश मे आकर उसकी ओर देखकर मुसकरायी और अन्दर भागी।

उसके बाद मल्कानी प्रभावित होता ही गया, पर मेरे अनुमान से प्रगति धीमी थी।

सुहास का प्रसव आसानी से हुआ था। उसे कोई कष्ट नहीं हुआ था। बच्चा भी स्वस्थ था। अत दो-ढाई महीने बाद ही मुझे वापस जाना था। जाने के महीने-भर बाद परीक्षा थी। फिर मुझे लम्बा उबाऊ रास्ता ही मिलता।

मल्कानी की गति से मेरी योजना पूरी होनी सम्भव नहीं थी। इस बार मैं वचन आदि के झगड़े में पड़ने वाली नहीं थी। वचन देकर भूपाल ने धोखा नहीं दिया था क्या? मेरा दाव अब आगे का था।

सुहास अस्पताल में ही थी। मैं उसके लिए दोनों समय खाना, दूध, कॉफी आदि ले जाती। बाकी समय स्वेटर बनाने बैठती। एक दिन मैं बुनाई कर रही थी कि नाना साहेब आफिस से आये—"क्यों शकुन्तला! कौन से दुष्यन्त का स्मरण चल रहा है!"

"क्या दुष्यन्त सबको मिल जाता है? इस समय तो एक बालिश्त-भर लाल बंदर का काम कर रही हूं। उसकी मौसी हो गयी हूं न।"

"अरे, वाह! वह तो मेरा शेर का बच्चा है।"

"छि! लाल लंगूर।"

"काले रंग की नकटी-बूची मौसी का भानजा बंदर हो, तो दोष किसका!"

"तुम अपने गोरेपन का इतना गर्व मत करो। दाढ़ी नहीं बनायी तो दो दिन में बंदर दिखायी देते हो, इसमें बच्चा तुम पर ही है।"

नाना साहेब उठकर मेरे सिर पर मारने लगे। मैं भागी। उन्होंने मेरे दोनों हाथ पकड़कर कहा—

"मैं बंदर हूं? करूं मरकट चेष्टा?"

"नहीं-नहीं," कहते हुए मैं हाथ छुड़ाकर भाग गयी।

पर नाना साहेब के इस स्पर्श से मेरे में आग सुलग उठी। मुझे इतनी मजाक नहीं करना चाहिए था। सुहास के पति से मर्यादापूर्ण व्यवहार ही रखना चाहिए था।

घर पर चैन नहीं पड़ रहा था। शरीर धधक उठा था। मैं पर्स लेकर बाजार की ओर निकली, पर अनचाहे ही आ गयी कपूर के क्लाथ के सामने। वहां थोड़ी रुकी, इतने में मल्कानी की गाड़ी आकर रुकी।

"हाय देवी ! क्लब जा रही है न ?" मल्कानी ने कहा। पर मुझे अचानक एक कल्पना सूझी।

"मैं जरा कपूर साहब के पास जा रही हूं। उन्होंने डिनर के लिए बुलाया है।" उसे विदा देती हुई मैं कपूर का जीना चढ़ी। अब इस नाटक के बाद जाना ही पड़ा। मैंने घंटी बजायी। कपूर अंदर अकेले थे।

"बैठ सुप्रिया, आज यहां कैसे ?"

"यूं ही जरा बाजार जा रही थी। सोचा, तुम्हें समय हो तो साथ ले चलें।"

"ओह ! पर मेरा नौकर अभी हाल ही काम से गया है। दो घंटे में आयेगा। तब तक जरा बैठ तो सही। आज पहली बार आयी है। कुछ तो होना चाहिए।"

उन्होंने बढ़िया चाकलेट, केक और बिस्किट निकाले। मैंने खाना शुरू किया। इस पर उन्होंने दो प्याले और बोतल भी निकाल ली।

"नहीं-नहीं, यह नहीं।"

"बहुत ऊंची चीज है, मिलती नहीं।"

"पर हम हिन्दू औरतें कभी नहीं पीतीं। उस दिन घूंट-भर चखी, यही बहुत।"

"आज मेरी मेहमानदारी समझकर बिलकुल थोड़ी-सी ले। शरबत के के साथ देता।"

वे शरबत की बोतल लाये, पैग भरे, मुझे बांह में रखकर उन्होंने प्याला हाथ में लेकर मुझे पिलाया।

"कड़वा है क्या ? केवल शरबत ही है।"

मुझे आग-सी लग रही थी। थोड़ा खाने के बाद उन्होंने मुझे दूसरा पैग पिला दिया।

मैं उठी।

"चक्कर आ रहे हैं क्या ? चल बालकनी में !"

वे मेरा हाथ पकड़कर बालकनी में ले गये। वहां आरामकुर्सी पर बिठाकर बोले, "हवा में अच्छा लगेगा।"

थोड़ी देर में मैं उठी।

"चल, अपना, फ्लैट तुझे दिखाता हू। यह हाल, यह किचन और बैडरूम।" हम एक बहुत आलीशान ऐशो-आराम से भरे कमरे मे खडे थे। मुझे बिस्तर पर बिठाते हुए बोले—

"कैसा है यह कमरा ? यहा आने पर कैसा लगता..."

मैं जाने के लिए उठी पर पाव लडखडा रहे थे।

"या ही चली जायेगी ?"

मैंने धडकती हुई छाती पर हाथ रखकर पूछा, उत्तर की बजाय उन्होंने मुझे बिस्तर पर ही दबा दिया।

"छोडो, मुझे छोडो, मुझे जाने दो।"

"अब नहीं। तूने परिणाम समझे बिना इतना खतरा लिया है क्या ? तू इसी के लिए आयी है और मैं तेरी यही इच्छा पूरी कर रहा हू। तेरी और मेरी भी।"

"नही, मेरे मन मे ऐसी बात नही थी।"

"डोंट लाइ। होंठ के निकट का प्याला पीना ही पडता है। फिर अच्छी तरह स्वाद लेते हुए पी।"

आगे तो मैं अपनी सुध ही खो बैठी।

१०

शुक्रवार को दोपहर मे मैं चर्च के अहाते मे घुसी। चारो ओर सुनसान था। चर्च के बगल मे एक बगले जैसी इमारत थी। मैंने उसका दरवाजा खटखटाया।

"कम इन।" मैं दरवाजा ढकेलकर अन्दर गयी।

"ह्वाट डू यू वाट, सिस्टर ?" टेबुल के उस ओर कुर्सी पर से उठकर आते हुए सफेद चोगा पहने दाढी वाले पादरी ने पूछा।

मैं थोडी घबरायी-सी इधर-उधर देखने लगी।

"डरो मत बताओ, कुछ बाधा है क्या ? किसी से कष्ट है ? कोई सकट आया है ? प्रभु दयानिधि है। वह तुमको शाति देगा।"

"फादर, आपने जो पूछा वे दोनों बातें हैं। अपनी गलती से ही मैं संकट में पड़ गयी हूँ। इस संकट से मुक्ति नहीं मिल रही और मिल भी गयी, तो मेरा धर्म और समाज मुझे क्षमा नहीं करेगा। मेरे सामने अब दो ही रास्ते हैं—मृत्यु या धर्म-परिवर्तन।"

"पेट में निष्पाप बच्चे को समाप्त करने से मन झिझकता है, पर विवाह के बिना हुए बच्चे को लेकर हमारा समाज मुझे जीने नहीं देगा: फादर, आपके धर्म का प्रवर्तक तो कुमारिका का ही पुत्र है। आप कुमारी माता को मस्तक ऊंचा रखकर जीने देंगे। उस निशानी को सम्मानपूर्वक पलने देंगे। मुझसे जोर-ज़बरदस्ती नहीं हुई है। गलती मेरी ही है। मैं कन्फेशन करती हूँ। मेरा धर्म परिवर्तन कराके मुझे अपनी गलतियां सुधारने का अवसर दें।"

मुझ में तो जैसे वक्तृत्व-शक्ति ही प्रकट हो गयी थी। पादरी साहब मेरी विशुद्ध अंग्रेज़ी से भी प्रभावित हो गये।

"बेटी, हमारा धर्म ही दया, क्षमा और शान्ति पर आधारित है। उस दयाघन के चरणों में तुझे शान्ति मिलेगी। चर्च में चल—उसके सामने कन्फेशन कर।"

मैं फादर के साथ चर्च में गयी। वहां शान्ति थी। फादर वेदी के आसन पर बैठ गये। दीवार पर चित्रित मेरी की प्रतिमा अपनी आंखों से संसार पर प्रेम बिखेर रही थी। दूसरी ओर जीसस हाथ फैलाकर शान्त मुद्रा में यातना सहन कर रहे थे।

विगत तीन महीनों के घटना-चक्र मेरी आंखों के सामने घूम गये। मैं मृणाल के प्रवास के लिए आयी और क्या कर बैठी!

मुझसे सौजन्य और सभ्यतापूर्ण व्यवहार करने वाले मल्वानी का मैं शोषण करती रही। धनार्जन में लम्बे रास्ते को टालने के लिए मैंने मल्वानी को गांठने की योजना बनायी। वह और उसका व्यवहार मुझे पसंद भी बहुत आया था। मैंने उस पर डोरे डाले। फिर कपूर से निकटता का प्रदर्शन करके उसकी ईर्ष्या भड़कायी। कपूर ने इस प्रदर्शन का दूसरा ही अर्थ लिया। पर इसमें उसका क्या कसूर? मैं क्यों नहीं समझी?

कपूर अपनी समझ के अनुसार ही आगे बढ़ा। शराब के

मेरे शरीर ने मुझे धोखा दिया। प्रतिकारहीन बन गया। स्वयं चलकर गुफा में आये शिकार को कोई भी पुरुष कैसे छोड़ता ?

मैं पश्चाताप में डूब गयी। इसी बीच सुहास की प्रसूती हुई। मैं स्वयं पर लज्जित थी, पर ऊपर से नॉर्मल दिखायी दे रही थी। विचार कर रही थी कि आगे क्या करूं ?

कई बार मैं आगे दौड़ी थी, पर स्त्रीत्व नहीं डगमगाया था। इस बार तो मेरा शील भंग हो ही गया। मैं तो खेल मल्कानी से खेल रही थी। उसे मोह-पाश में लेकर शादी का वचन लेने वाली थी। पर कपूर ने...अब कपूर को छोड़कर मल्कानी के साथ ही घूमने लगी। उसके साथ कुआलालम्पुर गयी। होटल में रही। उसे सर्वस्व दे दिया। उस मदन मूर्ति ने मुझे सुखों की झड़ी से भिगो दिया।

मैंने योजना सोच ली। मल्कानी के बाहुपाश में हर रात रंगीन होने लगी।

दो माह बाद एक नशे-भरी रात में मैंने मल्कानी के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा।

"क्यों डार्लिंग, विवाह की क्या आवश्यकता ?"

मैंने अपनी स्थिति बतायी।

"ओह, तुमने कैसी भयंकर गलती की ? मैं समझता था कि तुम ओरल-टेबलेट ले रही हो, नहीं तो मैं सावधानी रखता।"

"पर सूरज, हम एक-दूसरे के इतने निकट हैं। शादी ही कर डालें। सब प्रश्न मिट जायेंगे।"

"माई डीयर सुप्रिया, इस सीमा तक पहुंचने से पहले तूने विवाह का विषय कभी भी निकाला था क्या ?"

'कैसे निकालती ? तुझे इस चक्कर में लेकर ही तो तुझसे शादी की हां कराने की मेरी योजना थी।' मैंने मन में कहा। पर ऊपर से नकारात्मक गर्दन हिलायी।

"पगली, मेरी शादी हो चुकी है।"

मुझे धक्का लगा। कपूर के तो स्त्री-बच्चों का पता था, पर मल्कानी के बारे में उसने या अन्य किसी ने कभी उल्लेख नहीं किया। उसे देखकर

मुझे कल्पना ही नहीं हुई।

"पर सूरज, तुमने कभी नहीं बताया।"

"तुमने पूछा नहीं, इसीलिए बताया नहीं। पर मैं एकदम युवा लगता हूं, तो कई समझ जाते हैं कि अभी मेरी शादी नहीं हुई होगी। इसमें मुझे अहंकार सुख भी मिलता है। तुम मेरे निकट स्वयं आती गयी। विदेश में स्वकीय तरुणी के सहवास में मुझे आनन्द भी बहुत मिला।"

"मैं समझा सिंगापुर के भोग लोलुप वातावरण में तू वासना में जलने लगी होगी या अन्य किसी कारण से उत्तेजित हो रही होगी। फिर जो कुछ हुआ उसमें मेरा नैतिक दोष कहां?"

मेरे पास बोलने के लिए शब्द ही नहीं थे। शार्टकट की मेरी सारी योजना, सारी गणित गलत हो गयी। मुझे अहंकार हो गया था कि जिसे चाहूंगी, उसे वश में कर लूंगी। किया भी पर मैं हारी या जीती?

"सूरज, मेरी गलती हुई, पर मैं अब संकट में हूं।"

"मेरा एक मित्र अच्छा सर्जन है। अधिक देर नहीं हुई है। तुम्हें एक दिन में मुक्ति दिला देगा। सब कुछ चुपचाप हो जायेगा।"

मक्कानी का कहना ठीक था। मुझे सुनैना के क्यूरेटिंग आपरेशन का ध्यान आया। उस समय वह मरते-मरते बची। मैं कांप उठी। डॉक्टर ने उस समय सुनैना और मेरे रक्त का परीक्षण करके बताया था कि हम बहनों का रक्त पतला है इसलिए जन्म, आपरेशन, प्रसूति आदि में धोखा ही रहेगा, सावधानी रखना।

अभी प्रसव में पूर्व सुहास के रक्त की जांच का भी यही परिणाम था। डॉक्टर को बहुत सावधानी रखनी पड़ी थी।

इसके अतिरिक्त सूरज की निशानी से मुझे प्रेम भी बहुत हो गया था। लौकिक विवाह करके भी क्या मिलने वाला था, मैंने गर्भपात से इनकार कर दिया।

"सूरज, मैं तुमसे मन की गहराइयों के साथ प्रेम करती हूं...तेरी इस निशानी को मैं जीवित रखूंगी। उसे देखकर स्वयं जिन्दा रहूंगी।" मैंने निश्चयपूर्वक कहा, "मैं सिंगापुर छोड़कर जा रही हूं। तुम निश्चिन्त रहो।"

मेरा निर्णय सुनकर उसका हृदय भी भर आया। मुझे अन्तिम आलिंगन देकर उसने कहा, "प्रिया, तेरे निर्णय से मैं स्वयं शर्मिन्दा हो रहा हूं। मेरी शादी नहीं हुई होती, तो हम आजीवन साथ रहते। तेरा जीवन चमत्कारिक ही होगा। जब भी आवश्यकता हो, मैं पूरी सहायता करूंगा। अभी तो यह ले।" उसने नोटों की एक गड्डी आगे की।

"सूरज, तुमको लगता है क्या कि मैंने यह सारा नाटक इसके लिए ही किया है" मैंने उसके कन्धे पर सिर रखकर रोते हुए कहा।

"नहीं प्रिया, यह मेरा अधिकार है। तू इस संसार से अकेली टकराने जा रही है। मुझे कुछ सहायता करने दे।"

मैंने विचार किया—वास्तव में मैं अनिश्चितता के समुद्र में कूद रही थी। मुझे आधार चाहिए था। मैंने वे नोट लेकर सूरज से विदा ली।

घर आयी, मुझे चारों ओर प्रलय ही प्रलय दिखायी दे रहा था। मस्तिष्क में तूफान चल रहा था। रात-भर मैंने विचार किया। ताई-सुचेता-सुहास की तरह प्रामाणिक सन्तुष्ट चित्त न रखकर मैं, खुली और खुली की खुली हवा में उड़ने लगी। घर की परिस्थिति से कहीं ऊँची आकांक्षाएं मन में बसा लीं। हुआ क्या? "हमारे स्त्री का अस्तित्व शील ही समाप्त हो गया।"

अपने समाज और धर्म में अपने लिए स्थान दिखायी नहीं दे रहा था। प्राण देने का साहस नहीं था। अन्त में एक ही उपाय सूझा—धर्म-परिवर्तन। कान्वेन्ट में पढ़ने से ईसाई धर्म का मुझे अच्छा ज्ञान था। यही शरण-स्थल दिखायी दिया।

पादरी के सामने अपनी जीवन-गाथा सुनाने में मैंने कितने ही घंटे लगाये। पादरी साहब शान्ति और धैर्य से सुनते रहे।

मेरा मन हल्का हुआ।

"बेटी, प्रभु तुझे अवश्य अपने सान्निध्य में लेगा। तू स्वाभिमान से जी सकेगी। मानव सेवा के लिए तू नर्स बनना चाहती, तो प्रशिक्षण की व्यवस्था भी हो जायगी। तू बप्तिस्मा ले ले।"

मैंने हां कहा।

"तेरी उम्र क्या है?"

"सत्रह।"

"सत्रह" वे चकित हुए पर कहा, "भारतीय लड़की चौदह वर्ष की उम्र सुनत हो जाती है। तुझे चुपचाप बप्तिस्मा लेना होगा। रविवार को र निकलने से पूर्व यहां आ, सफेद ड्रेस पहनकर। प्रभु तेरी रक्षा करें।"

मैं इधर-उधर देखती बाहर निकली। फाटक के पास एक व्यक्ति ना—भारतीय। वह कुछ कहना चाह रहा था। मैं भागकर सामने रेस्तरां में घुस गयी। आर्डर देते-न-देते वही तरुण आकर सामने की ें पर बैठ गया।

धीरे से पूछा, "भारतीय ?"

मैंने रुखाई से गर्दन हिलायी।

"महाराष्ट्रीयन भी हो।"

"क्या बात है।" मैंने कड़ाई के साथ पूछा।

वह हंस दिया। मैं सिर झुकाकर सेंडविच खाने लगी।

"शिष्टाचारवश पूछ नहीं रहा था, पर तुम्हारी मन स्थित ठीक नहीं दिखायी दे रही। विदेश में अपने देशबन्धु को, विशेषकर समान भाषा-भाषी को देखकर तो बहुत ही आनन्द होता है। खूब बात करने की, गप्पें लगाने की इच्छा होती है न ? पर तुम तो मुझे टाल रही हो। तुम्हारे मन में निश्चित कोई तकलीफ है। मुझसे कहोगी क्या ?"

"मुझसे कुछ मत पूछो।"

"मैं तो तुमसे बात करूंगा ही, चाहे नाराज होओ।"

'यह क्या जबरदस्ती है ? मैं यहां से उठकर चली जाऊं ?"

"मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे तुम्हारे घर तक जाऊंगा।"

"तुम शैतान, मुझे ब्लैक मेल कर रहे हो ?"

"कुछ भी कहो—पर मैं तुम्हारे मन की बात सुनकर ही रहूंगा।"

"मैंने झूठमूठ कुछ भी बताया तो !"

"यह मैं देखूंगा। मैं मनोविज्ञान जानता हूं। यों भी मैंने तुम्हारा इतिहास जान लिया है। भविष्य की चर्चा ही करनी है।"

"क्या ?"

"तुम्हें चर्च के अहाते में घुसते देखकर ही शंका हो गयी थी। मैंने पीछा किया, तुम्हारा कन्फेशन सुना। फादर से तुम्हारी बातचीत भी

मुनी।"

"होशियार हो।"

"तुम्हारे ही देश का हू न। महाराष्ट्रीयन भी हू।"

"पर मेरे झगडे मे क्यो पडते हो?"

"यह मुझे सोचने दो। चलो, कही बैठकर बात करें।"

हम समुद्र की ओर चले। रेत मे चलते-चलते उसने एकदम पूछा, "तुमने धर्म परिवर्तन की क्यो सोची?"

"तुम को पता है न मैं किस अवस्था मे हू?"

"हा।"

"फिर इस ससार मे सम्मान से जीने का दूसरा रास्ता कौन-सा है? हिन्दू धर्म तो मुझे जीने नही देगा। पीस डालेगा। पाप छिपाने वाले तो जिन्दा रह सकते है। पर मुझे पेट मे अपने बच्चे की हत्या नही करनी है। पापी मनुष्य के भूतकाल को भूलने की उदारता अपने यहा नही..."

"शुचित्व और पावित्र्य की रक्षा के लिए हिन्दू धर्म पापियों को दूर करता है। पर पश्चात्ताप करने वालो को जीने की सधी मिलती है। जो पश्चात्ताप न करके दूर भागता है, वह पाप-कीचड मे और फसता जाता है। हिन्दू धर्म मे भी अनाथ बालकों और स्त्रियो के लिए सस्थाए हैं।"

"पर कितनी कम? और उनकी ओर भी समाज सहानुभूति से नही देखता। इसीलिए तो उदारतापूर्वक हाथ बढाने वाले विधर्मियो से वे शादी कर लेती है।"

"इस उदारता के पीछे स्वार्थ ही अधिक होता है—अपने धर्म के विस्तार का। हिन्दू धर्म अपने विस्तार के लिए ऐसी उदारता का प्रदर्शन नहीं करता। धर्म का विस्तार हमारा ध्येय है भी नही। टैगोर ने अपने उपन्यास 'गोरा' में लिखा भी है कि हिन्दू मन्दिर के बहुत द्वार होते हैं, पर सब बाहर खुलते हैं।"

"अर्थात् हिन्दू सरलता से बाहर जा सकता है, पर अन्दर आने वालो के लिए प्रवेश बन्द है। यही बात है न, अब बताओ मेरा निर्णय गलत है क्या?"

"नहीं। पादरी के सामने तेरा अस्खलित वक्तव्य और अभी भी तेरी

बातें सुनी। मुझे यही लगा है कि इतनी होशियार, गुणी और अच्छे घर की लड़की हिन्दू धर्म से क्यो चली जाए। तलवार या उदारता के नाम पर प्रलोभन से किये गये धर्म-विस्तार से हिन्दू धर्म की हानि ही हुई है। पर दोष अपना ही है। मध्य-युग के कर्मकाडव के प्रभाव से हमारा ह्रास होता गया। इस ह्रास को रोकने के लिए युवकों को त्याग करना पड़ेगा, कर्म करना पड़ेगा।"

"तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"सुप्रिया, तेरे सारे दोषो सहित मैं तुझे अपनी पत्नी बनाना चाहता हू। मैं तुझे प्रेम और आदर सहित गृहिणी पद पर बिठाऊगा। ऐसा प्रेम दूगा कि तेरा भूतकाल भी तेरे मन को चुभन न दे पाये।"

"तुम को...आपको मेरा नाम-गाव कुछ भी पता न होते हुए मुझ पर इतना विश्वास कैसे ?"

"तेरा नाम और पूर्व जीवन मैं सुन चुका हू। मैं अपना बताता हू। मैं हू पुरुषोत्तम साने, पूना से एम०ए०, एम०एड० किया। घर पर मा है और सम्पत्ति की देख-रेख के लिए एक भाई। पर्यटन का शौक होने से कई देशो मे नौकरी या छात्रवृत्ति के लिए आवेदन-पत्र दिये। यहा हाई स्कूल मे मुझे नौकरी मिल गयी। अच्छा आई०ए०एस० जैसा वेतन है और रहने को सुन्दर मकान।"

"तुम मेरे लिए यह क्यो कर रहे हो—धर्म-प्रेम से या दया से ?"

"दोनो ही बात होगी।"

"पर पति-पत्नी का लगाव, दाम्पत्य प्रेम ?"

"सहवास मे वह भी हो जायेगा। तुझे आत्मविश्वास नही क्या ? मुझे जीतना तो तेरे हाथ मे ही तो होगा ?"

मैंने पहली बार ध्यान से उसकी ओर देखा। सौदर्य की प्रतिमा के कोई चिह्न नही थे, पर आत्म-तेज था। पुरुषोत्तम जैसा। उत्तर मे मैं नीचे देखने लगी। मैं यह जुआ खेलने वाली थी। धर्म, त्याग की अपेक्षा सरल था।

उन्होने मेरा हाथ पकड़ा।

"फिर तय ?"

"हां, पर मेरा बच्चा।"

"संसार में मेरे नाम से ही आयेगा।"

"मेरे पुरुषोत्तम, मेरा उद्धार ही किया। मेरा नाम अहिल्या ही रखना। और हां, विवाह के बाद यहां से बदली करा लेना।"

"हां, कुआलालम्पुर, जावा, सुमात्रा कहीं भी जायेंगे और दोनों मिलकर अपना स्वर्ग सजायेंगे।"

मैंने उसके कन्धे पर गर्दन टिका दी, "तुम को सुखी रखना ही मेरा ध्येय होगा।"

• •